

**TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182055

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/1767As Accession No. J.H.1601

Author मिश्र, लक्ष्मीनारायण

Title अज्ञात वन 1950

This book should be returned on or before the date
last marked below.

अशोक वन

[पाँच एकांकी]

लक्ष्मीनारायण मिश्र

चेतना प्रकाशन लिमिटेड

प्रकाशक :
देवेन्द्रकुमार गोस्वामी
मेनेजिंग डायरेक्टर-
चेतना प्रकाशन लिमिटेड
आबिद रोड, हैदराबाद

प्रथम संस्करण १९५०

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य तीन रुपया

मुद्रक :
केदार शर्मा
व्यवस्थापक :
कमर्शियल प्रिंटिंग प्रेस
बेगमबाजार हैदराबाद

१	अशोक वन	पृष्ठ १
२	कौशम्बी	३१
३	विदिशा	५६
४	भविष्य का गर्व	६१
५	दशाश्व मेघ	११६

१

अशोक वन

पात्र और पृष्ठभूमि

— 0 —

- रावण — लंका का प्रतापी राजा, श्रीरामचन्द्र का शत्रु (अधेड़)
- जानकी — श्रीरामचन्द्रजी की धर्मपत्नी (युवती)
- चित्रांगदा — } रावण की रानियां (प्रौढ़ा)
मन्दोदरी }
- सुनन्दा — रावण की दासी (किशोरी)

[अशोकवन में जानकी के निवास की रामायणवाली कथा रावण जानकी के पास अकेले नहीं, अपनी रानियों के साथ गया था। अपने मन पर अंकुश रखने के लिये वह अपनी रानियों के साथ गया था। सीता के हृदय में वह श्रीरामचन्द्र को पराजित करना चाहता था। जो सम्भव न होसका]

(शंख और घंटे की ध्वनि। बीच-बीच में वेदमंत्रों के स्वर, अग्नि में आहुति डालने के समय की एक साथ निकली हुई कई कण्ठों से स्वाहा की ध्वनि)

सुनन्दा सुनन्दा आ गयी देवी ! दासी को कुछ करना है । अरे ! यह तो क्या बैठे बैठे सो रही हैं ? पलकें हिलती नहीं । एकटक उधर हँ ! वह कपोत का जोड़ा राजरानी जानकी देख रही हैं । (चलने की ध्वनि) देवी !

जानकी कौन...तुम...तुम...

सुनन्दा हँ देवी, यही दासी सुनन्दा ।

जानकी आओ बहन, बैठो ।

सुनन्दा क्या कह रही हैं देवी ? दासी दासी है, बहन वह कब बनेगी । आपकी बहन इस लंका में केवल राजबधू सुलोचना बन सकेगी, दूसरी तो कोई नहीं ।

जानकी कौन है यह सुलोचना ?

सुनन्दा इन्द्र को जीत कर इस लंका में बांध लानेवाले महाबाहु मेघनाद की स्त्री । आपने जिसे उस दिन देखा था ।

जानकी हँ, वही जो उस दिन उस वृक्ष के पास खड़ी थी, मुझे हाथ जोड़कर चली गयी ।

सुनन्दा वही राजबधू सुलोचना है जिसका श्रृंगार महारानी मन्दोदरी अपने हाथ से करती हैं ।

जानकी नहीं...नहीं...तीनों लोक में उसका जोड़ कहीं नहीं है सुनन्दा ! वीर पति की बह...

- सुनन्दा** पर वह आपको अपने से सुन्दर कह रही थी।
- जानकी** यह उनकी कृपा है। दस महीने से पति के विरह में...
 औसुओं में मेरा रूप क्या बह नहीं गया, सुनन्दा ! क्या
 सचमुच मैं अभी भी सुन्दर लगती हूँ ? उँह ! जाने दो,
 मैं कैसी हूँ क्या हूँ, जान कर क्या करूँगी ?
- सुनन्दा** क्या देख रही हैं राजरानी ?
- जानकी** वह कपोत का जोड़ा...पंछी भी प्रेम करते हैं। मनुष्य ने
 कभी प्रेमका पहला पाठ इन्हींसे पढ़ा होगा। पंछी का भी
 एक जोड़ा...
- सुनन्दा** सबका एक ही जोड़ा होता है देवी !
- जानकी** कहाँ ? तुम्हारे लंकापति को कितनी स्त्रियाँ हैं। कहते हैं
 कि कोई जानता ही नहीं कि कितनी स्त्रियों से उन्होंने
 प्रेम किया होगा। त्रिजटा से मैंने कल पूछा था।
- सुनन्दा** वह तो बढ़ बढ़ कर बोलती है। कुछ उलटा-सीधा कहा
 होगा।
- जानकी** तुम जानती हो तो फिर बोलो।
- सुनन्दा** (असमञ्जस) मैं...मैं... महारानियों का नाम मैं
 बता दूँगी।
- जानकी** त्रिजटा भी महारानियों का ही नाम जानती है। पर रावण
 ने कुल कितनी स्त्रियों पर अब तक कृपा की है कोई नहीं
 जानता। तुम्हारी माता महारानी मन्दोदरी की प्रधान-
 सेविका है। मायाने अपनी कन्या के साथ जो एक सहस्र
 किशोरी दासियाँ दी थीं उनमें तुम्हारी माता भी थी।
- सुनन्दा** हाँ देवी ! तब से वे बराबर रावण के रनिवास में रह गयीं।
- जानकी** जानती हूँ मैं। इन्द्रजयी मेघनाद तुमसे बड़ा है। मन्दोदरी
 के पेट से पैदा हुआ वह इस सोने की लंका का युवराज है

और कपिला के पेट से पैदा हुईं तुम अपने को दासी कहती हो। दोनों ही का पिता रावण हैं। देख रही हो अपना और मेघनाद का अन्तर !

सुनन्दा नहीं-नहीं...ऐसा नहीं देवी ! कोई सुने तो...
जानकी रावण का प्रताप किसी को सुनने और सोचने न देगा। इन्द्र को जीत लेना मेघनाद के लिए सरल था, पर इन अनीतियों की ओर उँगली उठाना उसके लिए भी सरल नहीं है।

सुनन्दा इसीलिए छोटे भाई विभीषण से उसकी नहीं पटती।
जानकी सुना विभीषण अकेले इस लंकापुरी में विचारवान् है। पर शक्ति विचार की बात सुनती कब है ?

सुनन्दा यह सब नहीं देवी, मुझे डर लगता है।
जानकी इसी डर को तो आर्यपुत्र ने हटाना चाहा और आज मेरी यह दशा है।

सुनन्दा सुनते है, अब आप भी रनिवास में चलेंगी।
जानकी वहाँ सेरे पैर धरते ही रनिवास जल जायेगा। सोने की लंका जल जायगी। सुनन्दा ! मैं जो यह कपोत का जोड़ा देख रही थी इसे मैंने पंचवटी में भी देखा था। आर्यपुत्र ने हँसकर कहा था, पिछले जन्म में हम दोनों कपोत के जोड़े थे। मैं हँसते-हँसते उनकी जाँघपर लेट गयी थी। इस कपोत के जोड़े में...इन्के मान-मनुहार में प्रेम की रागिनी को सुनती हूँ। (सिसकी)

सुनन्दा हाय ! हाय !! नहीं ! नहीं !! ऐसे नहीं देधी ! रोने से क्या होगा। अब इन आँखों से आँसू...कमल मोती बरसा रहे हैं। राजरानी जानकी...

जानकी जब अपना बोझ नहीं सहा जाता, सुनन्दा ! आँसुओं से

हलका होता है। जिस दिन मेरी आँखों से आँसू रुक जायेंगे, उनसे लपट निकलेगी। उसमें यह अशोक वन जल जायगा। यह सोने की लंका जल जायगी। जिसे कुवेर से तुम्हारे राजा ने छीन लिया, जिस में इन्द्र बाँधकर आया, जिसके नाम से ही संसार थरथराता है, जिस लंका ने अमरावती के वस्त्र छीनकर उसे नंगी बना दिया है, वही लंका जलेगी, सुनन्दा ! जलेगी।

सुनन्दा मैं भाग जाऊँगी देवी, आपकी बातों से मैं डर रही हूँ।
जानकी नहीं-नहीं... तुम्हें डराना मैं नहीं चाहती। बैठो यहाँ मेरे पास। आज यह अशोक वन इतना सूना क्यों है ? लंकाके किशोरों और किशोरियों की यह रंगभूमि आज ऐसी गुमसुम क्यों है ? रुनसुन, छमछम, यहाँ प्रिये, वहाँ प्राण, यह सब आज कहाँ गया ? तुम्हारी लंका में सुन्दरिया भी हैं, सुनन्दा ! और प्रेम भी है।

सुनन्दा आप नहीं जानतीं राजकुमारी !
जानकी नहीं, क्या बात है ? कहो ! अबतक तो बस इधर इस एक अशोक कुंज को छोड़कर यह सारा वन इन्द्रधनुष बन जाता था। जिस में वृक्षों के रंगरूप और अलंकारों की ज्योति होती थी। पिछले दस महिनों में किसी भी ऋतु में, बरसात में भी ऐसा दिन कोई नहीं गया जब इस अशोकवन में लंका का मद न छलकता रहा हो। मुझे तो कई बार ऐसा लगा कि मद के इस समुद्र में अकेली मैं एक विष की लहर हूँ।

सुनन्दा तब क्या ? आप विष की लहर हैं तो फिर अमृत कहाँ होगा ?

जानकी होगा कहां ! चन्द्रमा में, और उतनी दूर जाने में तुम्हें डर

लगे तो फिर राजवधू सुलोचना में देख लो। महारानी मन्दोदरी और चित्रांगदा में कभी रहा होगा। किसी भी किशोरी में रहता है सुनन्दा, तुम में भी है।

सुनन्दा मुझ में भी है !
जानकी तुम्हें नहीं दिखायी देगा। जिस दिन कोई तुम में वह देख लेगा ... ।

सुनन्दा चलिये हटिये। नहीं बोलती आप से।

जानकी मुझ से भाग्य ही रूठा है सुनन्दा ! मैं रघुवंश की बधू इस अशोकवन में ऐसी बन्द हूँ कि रात को आकाश के तारे और दिन को पेड़ों के पक्षी। राक्षस राज का अनुग्रह है कि नित्य कोई सखी भेज देते हैं।

सुनन्दा इस लंका की दासियां आपकी सखी हैं ? और जब रनिवास में सबसे ऊँचे मणियों के आसन पर बैठेंगी तब भी सखी मानेंगी ?

जानकी मेरा रनिवास अयोध्या में है सुनन्दा, इस लंका में नहीं।
सुनन्दा वह भी सोने की है।

जानकी नहीं ... सोने का रनिवास वहाँ होता है जहाँ दूसरों को लूटकर, दूसरों को बिगाड़ कर धन कमाया जाता है, जहाँ एक मनुष्य या एक परिवार अनेक मनुष्यों का रक्त चूसता है। इस लंका की नींव में रक्त है। अयोध्या मिट्टी की बनी है। उस मिट्टी से जिनके गर्भ से सोना भी निकलता है। तुम्हारी आंखों में सोना जो समा गया है इस लिए तुम मिट्टी का मोल न जान सकोगी हां, मन आज उड़ा जा रहा है। कहीं टिकता नहीं सुनन्दा ! क्या कहने को क्या कहने लगती हूँ।

सुनन्दा मन के भी पंख हैं, वह भी उड़ता है !

- जानकी** क्या कह रही थी ? यह अशोकवन क्यों सूना है ?
- सुनन्दा** मैं तो भूल ही गयी । आपकी बातों में कुछ टिकता ही नहीं, सब भूल जाती हूँ ।
- जानकी** तो अब न भूलो, कहो अब ... ।
- सुनन्दा** राजा ने आज इधर का रास्ता बन्द करवा दिया है । कोई भी आज अशोकवन में नहीं आ सकेगा । रास्ते से ही सब लौट रहे हैं । सबके मुख पर जैसे उदासी नाच रही है ।
- जानकी** ऐं, क्या बात है ? लंकेश मुझे अब किसी का मुख न देखने देंगे । किसी की मीठी बोली मेरे कान में अब न पड़ेगी । चिन्ता नहीं । देवजयी रावण को इसी अशोकवन में एक अबल्ला से हारना होगा । हारना होगा, सुनन्दा ! गाँठ बाँध लेना । यही होगा ।
- सुनन्दा** ऐसे काँप रही हो देवी, जैसे केले का पत्ता काँपता है या जल में कमल काँपता है । और हाथ से यह छाती क्यों दबा रही हो ? हैं, हैं, कहीं कोई पीड़ा है देवी ! वैद्य को कहूँ तब ... ।
- जानकी** इस पीड़ा की दवा किसी वैद्य के पास नहीं है सुनन्दा ! पंचवटी में देवर लक्ष्मण ने धनुष की नोक से जो गोल घेरा बना दिया था उसे भी यह अभागा ... ।
- सुनन्दा** ऐसा साहस ! राजरानी सीता, इन्द्र, यम, कुबेर, मरुत, लंकापति को गाली नहीं दे सकते ।
- जानकी** उन्हें तुम्हारे लंकापति का भय है । जानकी भी कभी भृग के छीने से भागती थी, पर अब वह काल की आँखों से आँखें मिला लेगी । तुम्हारे लंकेश मेरी ओर देख भी नहीं सकते, सुनन्दा ! फिर भी खेद है मैंने उनके लिए अभागा शब्द से काम लिया । अपना शील, अपनी

मर्यादा मुझे न छोड़ना चाहिए। क्रोध अन्धा बना देता है, विचार उड़ जाता है। क्षमा करना बहन ! जानकी अपने बैरी का मंगल चाहेगी। इस लंका में सब ओर से विवश, क्रोध से नहीं, शील से, संयम और सन्तोष से मेरा भला होगा। यह अशोकवन जैसा अब रात को रहेगा वैसा ही दिन को।

सुनन्दा कौन कहे देवी, कल क्या होगा ? बड़े बूढ़े यही कहते हैं, यहाँ जो कभी नहीं हुआ वही हो रहा है। समुद्र किनारे पर चढ़ रहा है। यह लंका कभी डूब जायेगी।

जानकी समुद्र किनारे पर चढ़ रहा है ?

सुनन्दा तो आप कभी सागर तट नहीं गयीं। इस अशोकवन के दक्षिण में समुद्र है। जो पेड़ किनारे से सौ गज भीतर लगाये गये थे अब उतनी ही दूर पानी में चले गये हैं।

जानकी समुद्र भी अपना सीमा छोड़ रहा है तो फिर रावण को दोष क्या दें ?

सुनन्दा पर कहा यही जा रहा है कि रावण के पाप से यह हो रहा है। आप कहती हैं कि लंका जल जायेगी और यहाँ तो लोग कहते हैं कि लंका डूब जायेगी। आज ही महारानी चित्रांगदा से एक ज्योतिषी बाबा कह रहे थे कि लंकापर भारी संकट आ रहा है।

जानकी तब ?

सुनन्दा तब रानी उदास हो उठीं। और हाँ, मैं तो भूल गयी। वह आज यहाँ आयेंगी !

जानकी यहाँ आयेंगी ? महारानी चित्रांगदा !

सुनन्दा कहा था, विदेह नन्दिनी से कह देना, आज उनके दर्शन करूंगी।

- जानकी** आज यहा सब क्या हो रहा है? सुनन्दा! कहो, सच कुछ जानती है ?
- सुनन्दा** नहीं देवी ! मैं कुछ नहीं ...
- जानकी** कोई नया छल, नया जाल ? सुनन्दा ! इस अशोकवन में आने का रास्ता बन्द है । रानी चित्रांगदा मेरे दर्शन को आ रही हैं । यहाँ की वायु में दम घुट रहा है । यह लंका संसार को पीसने के लिये नित्य नया चक्र बनाती है । आज भी कोई चक्र बन रहा है । और क्या यह चक्र आज मेरे लिये तो नहीं है ?
- सुनन्दा** महारानी चित्रांगदा की दया इस लंका में कौन नहीं जानता ।
- जानकी** तो महारानी दस महीने कहां रहीं ? आज ही अशोकवन में किसी के आने की आज्ञा नहीं है और आज ही वे महारानी यहां आ रही हैं । क्या समझा जाय सुनन्दा ? फिर भी क्या कहा था उन्होंने, कैसे ? याद करो जैसे कहा था उन्होंने...
- सुनन्दा** रानीजी ! आप सांस ऐसे क्यों ले रही हैं ? छाती के भीतर धौंकनी चल रही है । महारानी चित्रांगदा कभी किसी का बुरा नहीं करतीं ।
- जानकी** किसी का नहीं करतीं । पर मैं उनके शत्रु की स्त्री जो हूँ । मुझ पर भी वे दया कर सकेंगी ? जो होगा देखूंगी सुनन्दा ! नीचे धरती भी रहेगी ऊपर आकाश भी रहेगा । इस अशोकवन में लाल फूल बहुत होंगे, और लाल हो जायेंगे ।
- सुनन्दा** आप डर रही हैं ।
- जानकी** नहीं तो । डर तो मुझे अब यमराज के भैसे की घण्टी भी न दे पायेगी । जो अब तक न हुआ, आज हो रहा है ।

कैसे कहा उन्होंने, रानी चित्रांगदा ने क्या कहा मेरे लिए ? ऐसा कहो कि मेरे कान उन्हीं की बातों को सुन रहे हों ।

सुनन्दा उनके भवन में बड़े ज्योतिषी को घेरकर हम लोग खड़ी थीं । उन्होंने पूछा, आज अशोकवन में किसे जाना है ? मैं जा रही हूँ महारानी, मैंने कहा ।

जानकी तब...

सुनन्दा तब वे मुस्कराकर मेरी ओर देखती रहीं और तब बोली, कह देना विदेह नन्दिनी से, आज मैं उनके दर्शन करूँगी ।

जानकी उनकी आंखों में क्या था, देखा...

सुनन्दा आंखों में क्या था ? क्या होता है आंखों में ? आंखें थीं और क्या आंखें किरकिरी भी नहीं सह पातीं ।

जानकी फिर भी आंखों में समुद्र होता है, आकाश होता है, आग होती है, सुनन्दा ! आंखों में अमृत और विष भी होते हैं । आंखों में जो कुछ भी इस धरती पर है सब रहता है ।

सुनन्दा हो...हो...कौड़ी भर आंख में समुद्र, आकाश सब है । हूँ तो फिर महारानी की आंखों में क्या था, ऐं...ऐं... समुद्र बड़ा है कि आकाश, जो बड़ा हो वही ।

जानकी यहां इस लोक में विस्मय की कभी नहीं है । चित्रांगदा यदि मुझे कन्या बना ले, बेटी की बोल एक बेर बोल दे । मेरा पुण्य जो कभी भी सहाय न हुआ, बस आज एक बार सहाय हो तो फिर इस लंका का ही नहीं इस संसार का यह सब से बड़ा विस्मय आज होगा सुनन्दा ! मेरे कानों में कोई यह कह रहा है, बेटी जानकी ! किसकी

बोली है यह ? किसकी ? महारानी चित्रांगदा की या किसी दूसरे की ?

सुनन्दा अरे ! अरे ! सचमुच आप सुन रही है देवी, कोई कह रही है !

जानकी तुम नहीं सुन रही ! 'पुत्री जानकी' 'बेटी जानकी' इस सारे अशोक भवन में गूँज रहा है । धरती के भीतर से यही ध्वनि, ऊपर आकाश से यही ध्वनि । कोयल की कूक से मीठी, धाणा की रागिनी से मोहक, किस की ध्वनि है यह सुनन्दा ! जिसमें प्राण ऐसा नाच रहा है कि भँवर में नाव ।

सुनन्दा भँवर में नाव...फिर, जो डूब जाये ।

जानकी तब प्राण डूब जायगा ।

सुनन्दा और तब क्या होगा देवी !

जानकी इससे बाद भी कुछ होता है रे ! प्राण के डूब जाने पर कोई नहीं, कोई नहीं कहेगा सुनन्दा । तब क्या होता है ? प्राण के डूब जाने पर वियोग की आग बुझ जाती है, शोक और पीड़ा छू मन्तर हो जाती है, और भी कुछ होता है कुछ ऐसा, जिसका स्वाद कहा नहीं जाता ।

सुनन्दा जो शब्दों में नहीं सँसों में बहता है । उसे साँस लेकर कोई कब तक जिदेगा ?

जानकी मैं मरूँगी भी नहीं । मुझ से डर कर मृत्यु ही भाग जायेगी । विदेह की पुत्री और दशरथ की बधू जो कभी चित्र के वन से भी डरती थी, दण्डकारण्य का कोना कोना छान चुकी है । जिसके पैर पर्वतों के सिरोँ पर और अगम्य नदियों के जल में पड़े हैं । सिंह की आँखों से जिसकी आँखें मिलीं, कन्द-मूल का जिसने आहार किया ।

कितना देखा और अभी कितना देखूँगी सुनन्दा ! ब्रह्माने जिस दिन मुझे रचा होगा उनके हाथ थक गये होंगे । (नैपथ्य में—ऐसी रचना बार-बार नहीं होती । एक ही जानकी के बनाने में विधाता की सारी कलाएँ लग गयीं । न कोई दूसरी जानकी बनी थी अब तक और न अब बनेगी । जब तक यह सृष्टि चलेगी वैदेही तुम नारी-महिमा की मेखला रहोगी । तुम्हारा नाम लेकर, देवी ! पतिव्रता धारपर स्त्रियाँ चढ़ेंगी ।)

जानकी ऐं...सुनन्दा ! अमृत की यह वर्षा, इस लंका में पार्वती, शची, लक्ष्मी या माता धरती इस रूप में ...

चित्रांगदा पार्वती, शची, लक्ष्मी या माता धरती नहीं सौभाग्यवती ! इस धरती की धूल से बनी चित्रांगदा जिसकी रचना में ब्रह्माने दो बार टेढ़े-मेढ़े हाथ चला दिये थे ।

जानकी (गद्गद् कण्ठसे) नहीं माँ, ऐसा नहीं । तुम्हें देख कर पार्वती शची और लक्ष्मी की कल्पना, रूप धर लेती है ।

चित्रांगदा यह भार मेरे मान का नहीं है; किसी भी स्त्री के मान का नहीं है । सुनन्दा ने तुम्हें जन्म दिया था । फिर भी मैं कहूँगी, यह भार उनसे भी न चलेगा । तुम्हारी माँ अब केवल यह धरती हो सकेगी । जिसके विस्तार में तुम्हारा विस्तार, जिसकी क्षमा में तुम्हारी क्षमा, जिसके स्नेह में तुम्हारा स्नेह और जिसके धैर्य में तुम्हारा धैर्य है, और तुम मेरा संकट जानती हो, नहीं तो फिर जैसे पत्थर महादेव बनता है मैं तुम्हारी माँ भी बन जाती ।

जानकी महादेवी भी संकट में हैं जिनके संकेत पर त्रिलोकजयी लंकापति ...

चित्रांगदा यही मेरा गर्व है। मैं अजय प्राणनाथ की प्रिया हूँ।
रूष और पौरुष, तपस्या और शक्ति में जो इस जगत में
अकेले हैं।

जानकी तब यह संकट ?

चित्रांगदा वह मुझे भी कहना पड़ेगा ? दस महीने से नित्य क्या तुम
नहीं सुन रही हो कि राक्षसराज तुम पर अनुरक्त हैं ?

जानकी क्या... उन्होंने कभी कहा ? महात्मा रावण को मैं कलंक
नहीं लगाऊँगी।

चित्रांगदा उन्होंने नहीं कहा, किन्तु दासियों ने, उनकी ओर से जो
बार-बार तुम्हारे शृङ्गार का आग्रह हुआ। प्रसाधन की
वस्तुएँ जो यहाँ नित्य आती रहीं। इस अशोकवन के
पत्ते-पत्ते ने, पक्षी-पक्षी ने, रात को चन्द्रमा, और तारों भरी
रात ने क्या यह तुम से नहीं कहा ? मेरे पति जिसके प्रेम में
घुले जा रहे हैं, वह मेरी सखी हो सकेगी, बहन हो
सकेगी, किन्तु पुत्री कैसे ?

जानकी देवाधिदेव शंकर की उपासना और इन्द्रजयी पुत्र के
विक्रम से राक्षसराज की कामनाएँ नहीं मिटीं। माता !
क्या कह रही हो तुम यह ... ?

चित्रांगदा छाती पर पत्थर रखकर कह रही हूँ। पति की कामना में
योग देना नारी का सब से बड़ा धर्म है।

जानकी तो आज तुम इस लिए आयी ? नहीं नहीं, विश्वास नहीं
होता देवी ! राक्षसराज की कामना में योग देना तुम्हारा
सब से बड़ा धर्म है, और मेरा क्या है ?

चित्रांगदा अपने धर्म की बात मैं जानती हूँ, तुम्हारे धर्म की बात
जो मैं तुमसे कहूँ तो वह पति की कामना के विरोध में
होगी।

जानकी बस बस मौँ ! कह दिया तुमने मुझ से मेरा धर्म जाने दो जो स्थान आर्यपुत्र से भरा है उसका सपना भी विजयी रावण न देख सकेंगे ।

चित्रांगदा नारी का सब से बड़ा बल और विश्वास यही है देवी !

जानकी इसी बल और विश्वास से किसी भी दिन राक्षसराज का मद में उतार दूंगी । इस शरीर की दो ही सीमाएं हैं, जन्म और मृत्यु । एक में पार कर चुकी हूँ , दूसरी पार कर लूँगी, यदि रावण के अमोघ शस्त्र कभी इस शरीर पर भी पड़ें । महावीर नारी-वध कर आप ही मर जायेगा ।

चित्रांगदा कभी नहीं । लंकेश इन्द्रियजयी हैं । वे अनाचार नहीं करते ।

जानकी तब फिर वे ऐसा स्वप्न देखते हैं ?

चित्रांगदा उन्हें विश्वास है, उनके रूप, गुण, विभव और बल पर तुम किसी दिन मोहित होकर रहोगी ।

जानकी और तब मैं उनसे प्रणय निवेदन करूंगी ?

चित्रांगदा शब्दों से न सही, अनुभाव और चेष्टा से ।

जानकी ऐसा है ? आर्यपुत्र का रूप तब उन्होंने नहीं देखा । गुण और बल भी किसी दिन देख लेंगे ।

चित्रांगदा अपने युग के दो सब से प्रतापी पुरुष एक स्त्री के लिए संग्राम करेंगे, जिसकी जीत होगी स्त्री उसकी होगी ।

जानकी तब कहो कि स्त्री भी भूखण्ड है, धन की पिटारी या मणिमाला है । जो जीतेगा उसे उठा लेगा । उसकी न कोई रुचि है न कामना । वह चेतन भी नहीं है । अयोध्या का राजपाट छोड़कर जो पति के साथ वन को चल पड़ी, पति का प्रेम ही जिसका विभव रहा, वह किसी दिन वैभव की चमक में अपनी आँखें फोड़ लेगी । शस्त्र से नारी का हृदय नहीं जीता जाता, देवी !

चित्रांगदा येही बातें कह सकोगी उन देवजयी से...
जानकी देवजयी ? उनके लिए अब यह प्रशस्ति पौरुष की विडम्बना है, देवी ! जिसमें इतना संयम नहीं, जो दूसरे की विवाहिता का प्रेम चाहता है ।

चित्रांगदा मैं तुम्हारे पति की निन्दा नहीं करती ।
जानकी मैं भी निन्दा के लिए नहीं, सत्य के लिए कह रही हूँ । अब तक तो रावण से मैं डरती थी, किन्तु अब नहीं । पंचवटी में डरी थी । मन कड़ा नहीं था । इस लंका में न डरूंगी ।

चित्रांगदा उनकी ओर तुम देख सकोगी ?
जानकी जो मेरे प्रेम के मोह में डूब रहा है, उसकी ओर देखना नारी की मर्यादा के विरुद्ध होगा । पर पुरुष की ओर देखनी भी नहीं देवी ! फिर भी उस घड़ी मनो बल से काम लेना होगा । राक्षसराज विजयी हैं, बली हैं, दया और नीति में भी उन पर सन्देह नहीं । मेरे साथ उनका कोई भी व्यवहार उद्धत या अशिष्ट न हुआ । मेरे अभाग्य की यह अन्तिम कड़ी है देवी, कि आर्यपुत्र के शत्रु लंकापति बन गये । इन दोनों महापुरुषों के बँर का कारण मैं हूँ ।

चित्रांगदा ऐसी ही होनी थी । होनी कब टली है ?

जानकी पुरुष अधिकार और अहंकार में युद्ध करते हैं । नारी चुपचाप यह संहार देखती हैं । हम दोनों में किसी को विधवा तो होना ही है । इस युद्ध का यही परिणाम होगा । क्या हम यह देखती रहेंगी ? तुम चाहो तो यह रोक सकती हो मां...

चित्रांगदा किस तरह बेटी ? नारी राजनीति में नहीं पड़ती । हाय ! क्या कह गयी ।

जानकी माँ !...तुमने मुझे बेटी कह दिया । मेरा पुण्य सरायक हो

गया, तुम्हें देखते ही माता सुनयना की याद पड़ी थी ।
 तुम दोनों जो एक ठौर रहीं तो पहचानना कठिन होगा ।
चित्रांगदा कैसा जादू मुझपर हो गया । मैंने बेटी कह ही दिया ।
जानकी और इसका दुःख तुम्हारी आँखों में उतर आया है माँ !
 साँस में होकर भी यही दुख बह रहा है । सुनन्द ! कहा
 था मैंने यही न ।
सुनन्दा हाँ देवी ! पैर धरती पर डगमगा रहे हैं । आप तो कह रही
 थीं, महादेवी आपको बेटी कहेंगी । कह दिया उन्होंने ।
 आप जादू जानती हैं ।
जानकी (हँसते हुए) देख लो मेरी श्रीर महारानी की ओर । क्या
 मैं इनकी बेटी नहीं लगती । इनकी आँखों से मेरी आँखें
 हैं । नाक, होठ क्या नहीं हैं इनके साँचे का मेरा, ठीक से
 मिलकर तो देख । इनकी आयु के प्रायः चालीस संवत्सर
 और मेरे अठारह । माता और पुत्री की आयु का यही
 अन्तर भी होता है ।
चित्रांगदा तो अब मैं कहूँगी बेटी । कहती ही रहूँगी । बेटी जानकी !
जानकी भाग्य के मुँह किवाड़ खुल गये, माँ !
चित्रांगदा पर मैंने तो पति के साथ विश्वास-घात किया ।
जानकी कभी नहीं माँ ! पति को वासना से रोकना भी पतिव्रत है ।
चित्रांगदा पर वे यह न मानेंगे ।
जानकी अब यह मुझपर छोड़ दो । मैं उन्हींसे पूछूँगी, क्या उनका
 अनुराग वात्सल्य न हो सकेगा ।
चित्रांगदा वे अभी आयेंगे । मैंने उन्हें बुलाया है यहाँ । किस
 कामना में आयेंगे वे और यहाँ तो यह धरती उलट गयी ।
जानकी हाय ! माँ, तुम भी हमें छलने आयी थी अबला होकर ।
 नारी भी नारी के साथ छल करती है ।

चित्रांगदा यदि नारी की सहायता न हो तो पुरुष कभी नारी को छल नहीं सकता है। जहाँ कहीं भी नारी छली गयी, किसी न किसी नारी के कारण। पुरुष संसार जीत सकता है। सिंह और मतवाले हाथी को वश में कर सकता है, किन्तु नारी उसके लिए सदैव अजेय है।

ज्ञानकी (गम्भीर ध्वनि) ऐसी कातर न बनो माँ ! बेटी का सहारा केवल माता है। संकट में उसके मुँह से माँ की ही बात निकलती है। तुमने मुझे वही दिया है जिस पर मेरा अधिकार प्रकृति ने ही दिया था। प्रकृति का अधिकार बुद्धि हटाती है, मन तो उसे मान ही लेता है।

चित्रांगदा यही सही। मैं फिर आयी किस लिए और यह क्या हो गया मेरी बेटी बनने का अधिकार तुम्हें प्रकृति ने दिया था। मेरे निकट इस तरह सटकर खड़ी होने पर तुम मेरी कन्या सी लग भी रही हो। तुम्हारी माता महारानी सुनयना और मुझ में कोई भेद नहीं है, यह भी कह रही हो।

ज्ञानकी यही नहीं माँ, जैसी वे हैं तुम भी वैसी ही हो। मेरी आँखों में भेद नहीं बैठता तो फिर दूसरे तो भ्रम में पड़ेंगे ही।

चित्रांगदा यह कैसी ध्वनि है। रथ के चक्र की घरघराहट, ऐं...ऐं... सुनन्दा !

सुनन्दा उत्तरद्वार से आगे अभी रथ है।

चित्रांगदा फिर भी इस रथ की ध्वनि एक योजन से सुनायी पड़ती है। इस रथ के चक्रों से देवविजय का नाद निकलता है।

ज्ञानकी हाँ, पंचवटी में यही रथ गया था। इसी रथ ने घने वन और पर्वतों को पार किया था।

- चित्रांगदा** विदेह नन्दिनी मेरा एक भी मनोरथ पूरा नहीं हुआ। मैं आयी थी तुम्हारा शृङ्गार करने।
- जानकी** वस्त्र और शृङ्गार की यह सामग्री महादेवी अपने हाथों ले आयीं ?
- चित्रांगदा** जिसने तुम्हें इतना दुःख दिया, जो तुम्हारे पति का दारुण बैरी है, उसकी स्त्री मैं तुम्हारा शृङ्गार करूँगी और जब तुमने माता कहा, मेरा आग्रह न डालोगी।
- जानकी** हाय ! माँ, शृङ्गार अपने लिए नहीं होता। आर्यपुत्र अपने हाथ मेरे कंस संवार कर फूल लगाते थे। वनवासी पति के साथ दूसरे साधन कहाँ थे। शृङ्गार तो अयोध्या में ही छूट गया। वनवासिनी का शृङ्गार ? वह भी विरह के दाह में ?
- चित्रांगदा** इसलिए कि तुम्हें शोक में देख कर लंकापति का अनुराग और न उमड़ पड़े। शृङ्गार नारी के रूप को नहीं, तेज को भी बढ़ाता है। शृङ्गार जीवन का लक्षण है जानकी ! तुम्हें आज अपने तेज से लंका को जीतना है। तुम्हारे तेज की शिखा में उनकी आँखें न खुलें। यहीं इस आसन पर बैठ जाओ। मुझे कोई बेटी न हुई। तुम्हारा शृङ्गार कर अपनी साध पूरी कर लूँ।
- जानकी** समझ कर देवी ! रूपका सम्मोहन, रूपका मद और विष घातक भी होला है।
- चित्रांगदा** उनके लिए, जो दुर्बल मन के होते हैं। वे जो मन के विजयी हैं, रूप के विस्मय में धरती से ऊपर उठ जाते हैं।
- जानकी** तो नहीं मानोगी ?
- चित्रांगदा** अब नहीं। (बैठने की ध्वनि)
- जानकी** तो फिर रहा माँ का आग्रह। पर इन पटु हाथों की सारी कला न लगा देना।

चित्रांगदा—जहाँ ब्रह्माने अपनी सारी कला लगा दी है, मैं भी अब कसर न रहने दूंगी। समय नहीं है, फिर भी कला की गति समय और सीमा को पार कर जाती है।

(रथ की घरपाहट और अकस्मात् रुक जाना)

मन्दोदरी रथ क्यों रुक गया प्रभु ?

रावण देख रही हो प्रिय ! यह रथ यहीं रुका है।

मन्दोदरी इसी पर तो देवी चित्रांगदा आयी थीं उन्हीं का रथ है यह।

रावण पुलोम पुत्री शक्वी जैसी सुन्दरी और सुकुमारी चित्रांगदा रथ छोड़ कर कहां पैदल गयी। जैसे किसी देवी की पूजा के लिए मन्दिर से दूर रथ छोड़ दिया हो।

मन्दोदरी इसीलिए तुमने भी रथ रोक दिया।

रावण इन्द्र और देवस्थियों के सामने इस रथ का प्रताप है देवी ! विद्वद् नन्दिनी जानकी के पास इस रथ पर जाना उसे भय देना होगा। लोकविजयी मैं इसलिए नहीं हुआ कि एक अबला को भय दूं।

मन्दोदरी उसका अनुराग छोड़ दो नाथ ! संसार में सुन्दरियों की कभी नहीं है।

रावण जिस शत्रु ने बहन सूर्यणखा के नाक-कान काट लिए, जिसने खरदूषण और त्रिशिरा का वध किया, जो पंचवटी में केन्द्र बनाकर मेरे राज्य में विद्रोह फैला रहा है, उसका क्या उपाय करूंगा। जानकी-हरण मैंने नीति के अनुरूप किया। शत्रु की सम्पत्ति का अपहरण नीति है और अब जब उसे यहां ले आया तो उसके प्रति भी कोई धर्म है या नहीं ? प्रतिहिंस में उसके नाक-कान काट लेना ही साधारण पुरुष का काम होता, तुम जानती हो रावण असाधारण है।

मन्दोदरी तीनों लोक जानता है। लंकापति वीर ही नहीं, नीति और मर्यादा के समुद्र हैं।

रावण जो कोई नहीं करता वह मैं करना चाहता हूँ। शत्रु शोधन के लिए मैं अपना प्रणय उसकी प्रेयसी को देता हूँ। इसमें वासना नहीं, त्याग है प्रिये !

मन्दोदरी लेकिन उसके सामने तुम्हारे प्रणय का कोई मूल्य नहीं है।

रावण यही विस्मय है। जनक की यह कन्या किस धातु की बनी है ? अशोक के एक वृक्ष की वायु दस दिन में किसी भी रमणी के भीतर पुरुष की कामना जगा देती है। पुरुष के अंक में देह को शिथिल कर देने की लालसा नारी के रोम रोम से निकलने लगती है प्रिये ! प्रणय का गहरा रंग अशोक के तने पर तलवे रगड़ने से, उसकी पत्तियों को छूने से और उसके फूल को देखने से रमणी पर छा जाता है।

मन्दोदरी ओह ! तो फिर तुमने जानकी को अशोकवन में इसलिए रख दिया कि अशोक की वायु, उसके फूल और पत्तों के प्रभाव में उसके भीतर पुरुष की वासना बढ़ेगी ?

रावण हां...यह तो मैंने पंचवटी से यहां तक के रास्ते में देख लिया था कि इस जानकी पर पुरुष के वे शस्त्र व्यर्थ होंगे जो किसी भी युवती को जीत लेते हैं। रूप, बल, विभव और आतंक का प्रभाव पड़ना उस पर सम्भव नहीं, तब उसे अशोकवन के बीच रख दिया।

मन्दोदरी और दस महीने निकल गये, उसे एक नहीं कई सौ अशोक वृक्षों की वायु पीते, अशोक के पत्ते की सेज पर सोते, अशोक के फूलों की गन्ध लेते फिर भी अभी वह नहीं पिघली। प्रणय की वंशी उसके कानों में न बजी, न उसकी आंखों में प्रणय का मद चढ़ा और...और ब तो उसके अधर और कपोल लाल हुए।

रावण देखा था प्रिये ! तुमने कभी कोई दूसरी जिसपर अनुराग के सारे साधन इस तरह से व्यर्थ हुए हों । प्रकृति के अमोघ प्रभाव भी जिस पर काम न करें । देख चुका हूँ, मैं, प्रिय ! अमरावती की देवकन्याओं को । पारिजात की एक माला उनके कण्ठ में डालकर कोई भी पुरुष उनका प्रणय पा जाता है ।

मन्दोदरी किन्तु अमरावती में विवाह के बन्धन चलते नहीं, पति और पत्नीवाली बात वहां नहीं है । वहां सभी पुरुष और स्त्री हैं । आंखें लगीं ... ललाट पर पसीने की बूंदें मलक पड़ीं, अधर और कपोल लाल बने, सांस की गति बढ़ी और बस दो एक हो गये । इस जानकी की बात दूसरी है । इसको संस्कार में, जिस देश, कुल और विधान में इसका जन्म हुआ ... इसके लिए पुरुष एक ही है । श्रीरामचन्द्र को छोड़कर इतने बड़े लोक में इसके लिए दूसरा पुरुष पैदा नहीं हुआ ।

रावण पर उस राम में कौनसी बात है । वह वीर है, पर वीरों की भी कमी नहीं । वह रूपवान् है दूसरे भी उसकी कोटिके पुरुष निकल आवेंगे । पिताने जिसे बन भेजा, कन्दमूल जिसका भोजन है और भूमि जिसकी सेज है उसमें इस जानकी के प्राण कैसे बंधे हैं किस सुख और विलास की सम्भावना में इस त्रिलोक सुन्दरी का मन उसमें ऐसा उलझा है जो छूटता ही नहीं ।

मन्दोदरी तुम पुरुष हो ! ज्ञान और विज्ञान को तुम जानने हो, उसमें नारी के वे रहस्य कहीं खुले । और तुम एक ओर नीति और देवजयी यश को लिए हो दूसरी ओर इस तपस्विनी के अनुराग को । दो नाव पर एक साथ नहीं चढ़ते ।

रावण तो क्या मैं आज उसे इस रथ पर वैसे ही बैठा लूँ जैसे पंचवटी में बैठाया था और फिर.....

मन्दोदरी कहो भी, रुक कैसे गये...

रावण और फिर रथ से उतार कर अपने भवन में... नहीं प्रिय यह अनीति होगी। रावण उस नारी को ग्रहण कभी नहीं करेगा जिसकी आँखें उसका स्वागत न करें, जिसके कपोल उसे देख कर टट्टहे लाल न हो जाय, जिसकी हर साँस में अनुराग की रागिनी च हो।

मन्दोदरी पर तुम उसके निकट कभी अकेले गये भी तो नहीं?

रावण इन्द्र के वज्र को मैंने रोक लिया। यम के दण्ड, वरुण के पाश आराध्य शंकर के त्रिशूल की ओर मैं निर्भय देख लेता, हूँ पर जनक की इस कन्या की ओर देखना भी मेरे लिए सम्भव नहीं। उसके निकट अकेले चला जाना, एकान्त में उसके रूपका दर्शन... कह रही हो प्रिये! पलक नहीं गिरेगी और विवेक उड़ जायगा। मैं अपने को रोक सकूँगा? यही कहने के लिए कि लोकजयी लंकापति अन्त में एक अबल्ला से हार गया।

मन्दोदरी तब फिर इस तर्क से लाभ? तुम उसे लौटा दो। इन्द्रजीत या प्रलम्ब से कहो, उसे राम को दे आये।

रावण मैं उसे यहाँ ले आया। अपने से लौटाऊँ तो फिर संसार क्या कहेगा? शत्रु की स्त्री का मैंने हरण किया था तो वह अब मेरी होगी। यदि राम में बल होगा तो मुझे हराकर उसे ले जायेगा। निराशा मेरे लिए नहीं है प्रिये! चलने दो यह इन्द्र। विश्वजयी रावण एक ओर और यह जानकी, मोहनी जानकी दूसरी ओर। संसारका सबसे प्रतापी पुरुष और संसार की सब से सुन्दरी रमणी।

मन्दोदरी राम को पता चलेगा तब...

रावण इन्द्र की चिन्ता जिसे नहीं हुई वह इस वनवासी राम की चिन्ता करेगा, प्रिये ! वीर रमणी हो तुम । यह निर्बलता तुम्हें शोभा नहीं देती ।

मन्दोदरी इस अभिशिखा जानकी को लौटा दो नाथ ! नहीं तो फिर लंका जलेगी ।

रावण उस दिन जब प्रलय होगी । शंकर का ताण्डव इस सृष्टि का नाश करेगा, महादेव के श्रृंगीनाद में उनका यह भक्त भी नाचेगा प्रिये ! जो शंकर के बल से बली है वह राम की चिन्ता करे ?

मन्दोदरी राम का बल अभी तुमने नहीं देखा । खरदूषण का जिसने वध किया, बालि जिस के बाण से मरा, फिर भी जिस दिन मैं तुम से बलि किसी दूसरे पुरुष को मानूँगी उस दिन धरती में समा जाऊँगी । राम का बल राम में न देख कर जनक की पुत्री जानकी में देखो । दस महीने अशोक के वन में रहकर भी जिस के मन में किसी दूसरे पुरुष की, यहाँ तक कि तुम्हारी काममा भी जिसके मन में न हुई यह किस बात की सूचना है ।

रावण किस बात की प्रिये ?

मन्दोदरी जिस पुरुष को तुम उसकी स्त्री के मन में पराजित न कर सके, उसे तुम रण में पराजित न कर पाओगे ।

रावण यही तो चाह थी कि पहले उसे उसकी प्रेयसी के मन में पराजित कूँ । फिर भी चिन्ता नहीं । अपराजित रावण पराजित न होगा ।

मन्दोदरी तो क्या तुम उसे इस अशोक वन से न निकालोगे ? उसे यही रहने दोगे ?

रावण जिससे उसके रोम-रोम से, उसकी हर साँस से प्रेम का प्रणय का, अनुराग का संगीत निकले ।

मन्दोदरी इतने निठुर न बनो, नाथ !

रावण निठुर ? शत्रु की रमणी को इतना मान कब किसने दिया होगा, प्रिये ! पर अब चलें देवी चित्रांगदा राह देखती होंगी । देखूँ आज भी उसने शृङ्गार करने दिया या नहीं । यदि मैं निठुर हो पाता, नीति और मर्यादा से डगभर भी डिगता तो अबतक यह जानकी कब की मेरे अंक में आ चुकी होती । हाँ, क्या कहती हो । कहूँ मैं उससे आज से अब राम को भूलकर मेरा प्रणय ले, जिसे देव-कन्याएँ भी लेना चाहेंगी ।

मन्दोदरी और यदि वह कुछ न बोले ?

रावण मेरी दोनों रानियाँ उसका मौन भी न तोड़ सकेंगी ।

मन्दोदरी और कहीं तुम उसे भय दो ?

रावण भय से प्रेम नहीं लिया जाता । मैं उससे पूछूँ, राम में मुझ से अधिक गुण क्या हैं ? देखें क्या कहती है । चलो रथ यहीं छोड़कर चलें । देखें चित्रांगदा क्या कर रही है ।

(दोनों के चलने की ध्वनि)

मन्दोदरी देख रहे हो, चित्रांगदा उसकी वेणी में अशोक के फूल लगा रही है ।

रावण देख रहा हूँ । ऊर्वशी, रम्भा, मेनका की वेणी में देख चुका हूँ । कहीं भी विष की यह लहर नहीं देखी ।

मन्दोदरी उसका मुख देखकर मूर्छित तो न हो जाओगे ?

रावण इसलिए तो दो रानियों के साथ चला । यही भय था । अपवाद और आघात दोनों से बचा रहूँ ।

- मन्दोदरी** देवी चित्रांगदा से भी सुन्दरी है यह जानकी ? देख रहे हो उसके शृङ्गार में संगीत से भी काम ले रही हैं ।
- रावण** फिर भी तुम निरुर कह रही हो । तुमने मुझे इन्द्रजीत जैसा रत्न दिया, किन्तु प्रणय की भूख तो चित्रांगदा से ही मिटी । मेरी वही प्रियतमा इस अभिमानिनी के शृङ्गार में स्वर और लय का जाल बुन रही है । अपना शृङ्गार भी इस लगन से जिसने कभी नहीं किया होगा ।
- मन्दोदरी** हाँ जी, जैसे सोने की मूर्तियाँ एक दूसरे के सहारे खड़ी हों ।
- रावण** जानकी जितना ही अधिक मेरा निवारण करती है, मैं उसकी ओर खिंचा जाता हूँ । कामना का अवरोध असह्य होता है । सुनन्दाने देख लिया ।
- सुनन्दा** महाराज और महारानी की जय !
- चित्रांगदा** अरे ! तो प्रभु आ गये ? पैदल...
- रावण** मैंने देखा कि महारानी चित्रांगदा पैदल ही गयी हैं । पुरुष कठोर होकर सूख जाता यदि रमणी का शील उसे सरस न बनाता ।
- मन्दोदरी** विदेह नन्दिनी ! यहाँ तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है ?
- जानकी** महारानी मन्दोदरी के समीप किसी नारी को कष्ट हो तो फिर महारानी का यश क्या रहेगा ?
- रावण** कृतज्ञ हूँ चित्रांगदा ! तुम्हारी कला धन्य है ।
- चित्रांगदा** मेरी नहीं प्रियतम ! ब्रह्मा की कला के कृतज्ञ बनो, जिसने अपनी इस एक रचना में अपनी सारी कला लगा दी ।
- रावण** जानकी देवी ! चित्रांगदाने तुम्हारा अपने हाथों शृङ्गार किया । यह अवसर तुम्हें पंचवटी में न मिलता ।
- जानकी** माता अपनी पुत्री का शृङ्गार करती है । यह कोई नयी बात नहीं है ।
- रावण** क्या क्या ...

चित्रांगदा बेटी जानकी का शृङ्गार मैंने किया देव ! इसका इस तरह से सूखते रहना हमारे लिए, इस सोने की लंका के लिए अभीशाप होता ।

रावण तो जानकी को बेटी बनाने आयी हो यहाँ देवी !

मन्दोदरी देवी चित्रांगदा को भय हुआ कि इस सौत से उनकी ओर महाराज की रुचि न रहेगी ।

चित्रांगदा झूठ है महारानी ! यह चित्रांगदा प्रियतम के लिए प्राण निकाल देगी ।

रावण तो फिर देवी...यह विश्वासघात ?

जानकी कभी नहीं । वासना से पति को बचा लेना भी पतिव्रत है । अपना शरीर, अपना हृदय, मन की सारी कामनाओं को जिसने सौंप दिया, विश्वासघात वह क्या जानेगी लंकापति ! इन्हें देखकर मुझे माता सुनयना की याद आती रही । बार-बार मैंने इन्हें माँ कहा । इस बात को ये रोकती भी नहीं, किन्तु प्रकृति का अधिकार कब तक रुकता है ।

रावण प्रकृति का अधिकार...

जानकी मेरी अवस्था इनकी पुत्री जैसी नहीं है ? चालीस और अठारह । माता और पुत्री का अनुपात क्या यही नहीं है, इसे प्रकृति का अधिकार नहीं कहेंगे ? महारानी मन्दोदरी !

मन्दोदरी जानकी, देवजयी लंकापति के लिए देव, यक्ष, किन्नर और नाग कन्याएं सदैव कामना करती रहीं । इनकी कामना कभी किसी नारी की ओर नहीं हुई । जिसने इनकी शरण चाही, जिसके मन में इनका अनुराग जागा उसे इनकी शरण मिली, इनका प्रेम मिला, इनका विभाव मिला ।

रावण रुको देवी ! चित्रांगदा तुम्हारी माता की अवस्था की है, जानकी ! किन्तु मैं ? जान लो पुरुष की आयु नहीं, उसका रूप और तेज देखा जाता है ।

जानकी तो इसका अर्थ यह कि राक्षसराज मुझ से अपना प्रणय निवेदन करते हैं। आत्मसमर्पण नारी करती है राक्षसराज ! पुरुष नहीं, और पुरुष जब यह करता है फिर पुरुष नहीं रह जाता। देवजयी रावण किसी नारी से प्रणय का प्रस्ताव करें तब पौरुष धूल में लोटेगा और वीरता विडम्बना होगी।

चित्रांगदा बेटी !

रावण विदेह पुत्री ! रावण के अपमान की शक्ति इन्द्र और यम में नहीं है। अपमान करने वाले के कण्ठ पर मेरा यह चन्द्रहास...

जानकी यह कण्ठ झुका है। मैं रावण के इस चन्द्रहास का स्वागत अपने कण्ठ पर करती हूँ, जिसके आतंक में तीनों लोक काँपते हैं। अपमान नहीं करती मैं। स्वार्थ की ठेस अपमान सी लगती ही है, इस में मेरा अपराध नहीं।

चित्रांगदा क्रोध नहीं प्रभु ! विश्वजयी नारी पर क्रोध करेंगे तो फिर इसके नाक कान काट कर वहीं पंचवटी में फेंक देते। इतने शील, इतने संयम और इतने धैर्य की ...

रावण नीति और मर्यादा के विचार में आज यह सुनना पड़ा, नहीं तो फिर इस अशोक वन में न रखकर अपने अतःपुर में रखता।

जानकी महात्मा रावण की इस से कीर्ति बढ़ी। इस अशोक वन में जानकी जीवित है, अन्तःपुर में उसका शव रहता।

रावण उस वनवासी रामचन्द्र में क्या है ऐसा ? रूप, गुण, विक्रम, धन और विभव किस बात में वह मेरी समता करेगा ?

जानकी इसका उत्तर महारानी मन्दोदरी दें। माता चित्रांगदा भी दे सकेंगी। लंकापति से अधिक सुन्दर और बली कोई दूसरा पुरुष इन देवियों ने देखा है ?

रावण कहीं कोई हो भी तो...

जानकी होगा भी तो नहीं दिखायी देगा। पति के रूप से बढ़कर कोई भी दूसरा रूप नारी की आँखों में आता ही नहीं। महारानी मन्दोदरी और माता चित्रांगदा की आँखों में राक्षसराज सब से सुन्दर और सब से मोहक पुरुष है। इन्द्रजयी मेघनाद की स्त्री उनसे रूपवान् दूसरा पुरुष न देखती होगी।

रावण हैं...तो फिर राम से अधिक रूपवान् पुरुष तुम्हारे लिए कोई दूसरा नहीं हैं?

जानकी राक्षसराज किसी भी बात में आर्यपुत्र से घटकर हैं यह अपने मुँह से न कहूँगी। शील और मर्यादा का यही आग्रह है। दो पुरुषों की समता की बात न कह कर उनका जो भेद है...

रावण और क्या है वह? इधर देखो, बस एक बार मेरी ओर देखकर कहो।

जानकी यह लाभ मैं लंकापति को न दूँगी। प्रतापी रावण के प्रणय और प्रेम की सीमा नहीं है। वह एक ही साथ कितनी रमणियों को मिलेगा? आर्यपुत्र ने केवल इसी एक अभागिनी को अपना प्रणय दिया था। बस इस एक ही दान में उनके पास फिर कुछ न बचा।

रावण (गम्भीर ध्वनि) क्या एक पुरुष की एक ही स्त्री?

जानकी आर्यपुत्र की आँखों में एक ही नारी चढ़ी। उनके अधरों को एक ही नारी के अधर मिले। उनकी बाहें एक ही नारी के गले में पड़ी। राक्षसराज के बल का, प्रताप का और प्रेम का अन्त नहीं है। आर्यपुत्र के प्रेम का अन्त लग चुका है, बल और प्रताप की बात मैं जानती नहीं।

रावण विस्मय है।

जानकी यह अशोकवन इस विस्मय को कभी मिटने न देगा राक्षसराज!

२

कौशाम्बी

पात्र और पृष्ठभूमि

—:O:—

उदयन	कौशाम्बी नरेश, युवा
वासवदत्ता } पद्मावती }	उदयन की रानियां; युवती
मन्त्री	उदयन का; मन्त्री अधेड़
कुमार	उदयन का पुत्र किशोर; बालक
तन्त्रागत	गौतम
प्रतिहारी	यवनी, तरुणी
अश्वघोष	बौद्ध कवि और विचारक
कनिष्क	कुषान सम्राट
गणपति } नागसेन } अच्युत }	नागवीर
समुद्रगुप्त	प्रसिद्ध गुप्त सम्राट
वसुवधु	बौद्ध दार्शनिक
हर्षवर्धन	थानेश्वर का राजा, कवि ।
हुएन त्सांग	चीनी पर्यटक ।

[कौशाम्बी के इतिहास के दृश्य]

(कौशाम्बी का राजभवन । राजभवन से लगा, परकोटे से घिरा प्रमदवन । यवनी प्रतिहारी प्रमदवन की ओर देख रही है)

प्रतिहारी (मंदध्वनि) कामदेव आज धनुष और बाण भूल गया है । कहीं सुन न लें...जय हो देव महादेवी आपका स्मरण कर रही थीं ।

उदयन क्या न सुन लें ? (हंसकर) किसके धनुष बाण भूल गये हैं ? क्यों...इधर देखो सिर क्यों फेर लिया...महादेवी का स्नेह तुम्हें प्रगल्भ बना रहा है । सागरिका...हूँ ... ।

प्रतिहारी आपके राज्य में...अन्तःपुर में भी जो भय हो...तो फिर बाहर क्या होगा । कहा था कि...

उदयन क्या कहा था ? मेरे राज्य में भीतर बाहर भय नहीं है । यौगन्धरायण जिसके मंत्री हैं और रुमणूवान जिसका सेनापति है, उसके राज में न भीतर भय है और न बाहर...भुजाओं में मेरे अभी बल है और बुद्धि भी सयग है ।

प्रतिहारी (हंसकर) कहा था देव...

उदयन क्या कहा था यही तो पूछ रहा हूँ ।

प्रतिहारी हां...कामदेव धनुष और बाण भूल गया है । (इंसी)

उदयन रति के पास जो जा रहा है...उसके शस्त्र वहां किस काम के होंगे ? क्या पता था कि आज यहां सागरिका है...नहीं तो यहां बे...

- प्रतिहारी** काम आते देव ! राह चलते चलते ? दान में भी पात्र का विचार होता है देवी सुन लें तो...
- उदयन** नहीं सुना तुमने...एक वृक्ष से कई लताएं लिपटती हैं । महादेवी यही तो कहती हैं । ऐसा न होता तो मगध कुमारी से विवाह में कभी न करता...उन्हींके आग्रह से तो यह हुआ ।
- प्रतिहारी** पर देव तो पत्नीव्रती हैं...बिना पत्नी व्रत के...पतिव्रत शास्त्रों में ही रह जायगा ।
- उदयन** (हंसते हंसते) अच्छा तो तुम शास्त्र भी जान गईं ! यवन देश में पतिव्रत चलता है कि नहीं ?
- प्रतिहारी** जी नहीं वहां प्रेम के बन्धन नहीं बने...बिसका पिता कौन है यह वहां जल्दी नहीं जाना जाता ।
- उदयन** इसीलिये तुम इतनी खुली रहती हो...किसी दिन तुम्हें भी ।
- प्रतिहारी** चलिये भी...देवी के साथ विश्वासघात...
- उदयन** बांध के टूट जाने पर फिर पानी कहां रुकता है ? देवी ने ही बांध तोड़ दिया । नहीं तो केवल उन्हें पा कर संसार में मेरे लिये कोई भी दूसरी कामना न थी । महात्मा योमन्धरायण के साम, दाम, अनुनय, विनय इस राज्य के सारे मंगल विधान में दूर फेंक चुका था ।
- प्रतिहारी** मगध नरेश के राजदूत से आपने साफ कह दिया था... दूसरा विवाह आपके लिये संभव नहीं । देवी वासवदत्ता को छोड़ कर किसी भी दूसरी कुमारी में आपका मन अनुरक्त न होगा ।
- उदयन** और तभी देवी ने स्वयं उपस्थित होकर अपनी ओर से प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । मेरे नीचे से धरती सरक गई ... ऊपर आकाश कांप उठा...मेरी आंखें एक टक

उनके मुँह पर टिकी रहीं ... नारी कोमल ही नहीं कठोर भी होती है और जिस क्षण वह अपने पर कठोर होती है, उनकी ओर देखना भी कठिन है।

प्रतिहारी आपके लिये देव ... आपके राज्य के कल्याण के लिये। अवन्ती नरेश आपके श्वसुर थे ही अब मगध के दर्शक भी आपके सम्बन्धी बने। पूर्व और पश्चिम दोनों सीमाएं सुरक्षित हैं ... जैसे दो समुद्रों के बीच में कोई द्वीप हो।

उदयन सागरिका अलंकार के शब्द तूने कहां सीखे ?

प्रतिहारी मन जब किसी आनन्द में नाच उठता है शब्दों को अलंकार मिल जाते हैं देव !

उदयन मेरे राज्य की दोनों सीमाएं सुरक्षित हुईं ... पर मेरे मन की सीमा ? मेरे इस मन के भीतर भी कोई सीमा थी जो टूट गई।

प्रतिहारी प्रेम की सीमा श्रीमान्। इसकी भी कहीं कोई सीमा है ?

उदयन (हँस कर) कहते यही हैं सागरिका ! पर जहां यह असीम है वहां स्त्री नहीं है ... पुत्र नहीं है ... अपना पराया नहीं है। वहां है क्या ... न किसी ने देखा न जाना ... तुमने कभी किसी को प्रेम किया ?

प्रतिहारी करूंगी तो पूछ लूंगी। परिचारिका प्रेम करने में भी स्वतन्त्र कहां है ? यहां तो वह भी अपराध होगा... उसके नियम और बन्धन जो बन गये हैं और राजभवन में तो वे और भी कठोर हैं।

उदयन इतनी निराशा में नहीं, प्रेम का अवसर तुम्हें मिलेगा... देवी तुम्हारे लिये वर की खोज में है, योग्यपात्र के लिये उन्होंने मुझसे कहा है।

प्रतिहारी आप से !
उदयन अरे ! कांप क्यों रही है...अगले महीने तुझे पति मिलेगा
 स्वस्थ, सुन्दर, तरुण और

प्रतिहारी और क्या
उदयन जिसे देख कर तुझे कामदेव भूल जायगा ।

प्रतिहारी मैं यहां से चली जाऊंगी । देवी को छोड़ कर...यह न
 होगा । न होगा यह देव ! आठ वर्ष की अवस्था में
 भृगुकच्छ पर जलयान से उतरी थी तब से बराबर
 महादेवी की सेवा में रही...अवन्ती में और यहां भी
 अब तो यह जन्म उनकी सेवा में ही लग जायगा ।

उदयन पगली ! देवी ने महासेन जैसे पराक्रमी पिता को छोड़
 दिया...पति के लिये सब छूट जाता है । जा, देवी को मेरे
 आने की सूचना दे दे । उनसे यह कहना न भूलना...
 मैं तुझ से परिहास कर रहा था ।

प्रतिहारी हूँ, तब क्यों कि मैं आज ही निकाली जाऊं...अभी एक
 महीना तो आशा है (जाने की ध्वनी)

उदयन अरे ! देवी तो इधर प्रमदवन से आ रही हैं... इस
 समय प्रमदवन से ... इसीलिये घोषवती के स्वर कानों
 में अमृत नहीं बरसा रहे हैं । देवी स्वस्थ तो है...आखें
 चढ़ी हैं ... ललाट और कपोलों में चिन्ता है ... ओठ
 सूखे । क्या हुआ...क्या कष्ट है देवी को । प्रिय ! इस
 समय उद्यान में...

वासवदत्ता (प्रवेश कर) आर्यपुत्र यशस्वी बाट जोहती रही...
 अकेले वीणा नहीं बजाती, सोचा उपवन से हो आऊं ।

उदयन चित तो ठीक है खिन्न हो प्रिये !

वासवदत्ता नहीं कुछ नहीं...

उद्यन कुछ छिपा रही हो

वासवदत्ता जिस दिन यह कहूंगी...प्रभु से भी कुछ छिपाऊंगी उस दिन मृत्यु मांग लूंगी यमराज से...

उद्यन यही तो...मुझे सपत्नी को सौंपते हुये चिन्ता नहीं हुई तुम्हें...आज यह क्या है...कमल पर तुषार पड़ गया है या चन्द्रमा पर ग्रहण लगा हो...

वासवदत्ता यहीं बैठें (कपाट खुलने की ध्वनि) घोषवती भी यहीं है उपवन और फिर आगे यमुना की धारा भी देखेंगे। (स्वर मारी हो उठता है)

उद्यन अरे ! तुम्हारी आखों में आसूं प्रिये ! शत्रु के दारुणघात से बढ कर भी...मेरे लिये तुम्हारे ये आसूं ! और सब सह लूंगा पर यह नहीं (कंठ भर आता है)

वासवदत्ता नारी का सब से बड़ा धल और विश्वास यही है प्रियतम !

उद्यन पर किस अपराध पर देवी परिहास में करता हूं...अभी सागरिका से किया था...किन्तु तुम मुझे जानती हो।

वासवदत्ता पिता के बन्दीगृह में...जिस क्षण पहले पहल देखा था ...जैसे फिल्ले जन्मों की आशक्ति चरणों में उमड़ पड़ी थी। इतने एक जन्म की बात क्या कहूं ? किया था किसी राजकुमारी ने कभी किसी बन्दी से प्रेम ? पिता...माता ...राजवंश की सूर्यादा...सब कुछ जिसके प्रथम दर्शन में भूल गई और जो रोम रोम में रम गया।

उद्यन तुम्हारे पिता का बन्दी ...अब जन्म भर तुम्हारा बन्दी है। उस बंधन से तुमने मुक्त किया था...इस बन्धन से देव भी मुक्त नहीं कर सकेगा। मुक्ति आने में देर हो गई। मंत्रिपरिषद् में ऐसा ही कार्य आ पडा। भार्गवभूमि में

कौशाम्बी की सेना प्रवेश कर गई। रुमण्वान शत्रुओं को ऐसे उड़ा रहा है जैसे आंधी उड़ाती है सेमर की रूई। जिस सेना ने कलिंग जीता उसे भार्गव क्या रोक लेते ?

वासवदत्ता आर्यपुत्र विजय के लिए नहीं चलते। विजय आप ही आर्यपुत्र के पीछे चलती हैं।

उदयन भारतजयी परन्तप अर्जुन का रक्त है इन धमनियों में देवी। ऐसा न हो तो फिर उन विजयी पूर्व पुरुष की कीर्ति क्या रहेगी ? काशी कोशल के उदर में समा चुकी है...अब कौशाम्बी की सीमा को आगे बढ़ाना नीति न होती। सहायक सेना और सामग्री के प्रबन्ध में मुझे देर हो गई...और तुम इतने ही में...

वासवदत्ता रो पड़ी अब यह भी कह दो। पर मैं अपने लिये कभी नहीं रोती...किस अभाव में रोऊंगी मैं...जब तक इन्द्र से पराक्रमी और कामदेव से मोहक तुम मिले हो और जो पुरुष परिहास न करे उस नीरस से अच्छी है नारी। बन्दीगृह में भी जिसने प्रतिहारियों और तरुणी यवनियों से परिहास किया वह अपने घर में न करे ? तुम्हारे परिहास की बातें सुन सुन कर ही तो मेरे मन में उन्माद छाया था।

उदयन (हंसकर) अच्छा...तो उस पत्थर के बन्दीगृह की दीवारों को तोड़ कर मेरा परिहास तुम तक पहुंचता रहा।

वासवदत्ता तात महासेन कठोर प्रकृति के हो कर भी राजधर्म से हीन नहीं हैं। छल से तुम्हें बन्दी बना कर भी...तुम्हारे शरीर को उन्होंने कोई कष्ट न होने दिया।

उद्यन नहीं, नहीं कठोर न कहो उन्हें, उनकी दया तुम नहीं जानती मैं जानता हूँ ।

वासवदत्ता जिसने मेरी इस देह को जन्म दिया...उसके प्रति यह तुम्हारा पक्षपात है । अपने श्वसुर की निन्दा तुम कैसे सह सकोगे । फिर भी यह फूलों की सेज पर लोटने वाला देव शरीर बन्दीगृह में गया कैसे ? जिस रूप में आखें उलझ जाती हैं...जिस वाणी में मन नाच उठता है... जिन चरणों को पाकर धरती भी धन्य हो उठी उसे जिसने बन्दीगृह में बन्द किया वह कठोर नहीं, वज्र नहीं तो है क्या ?

उद्यन वे चंडविक्रम प्रद्योत हैं, सुकुमारी वासवदत्ता नहीं । तुम्हारी आखों को इस शरीर से जितना मिला उतना उनकी आखों को नहीं मिला । बस और क्या ? वे बातें अब पुरानी पड़ें, पर मेरा परिहास कभी पुराना नई पड़ता । दुर्ग में मेरा परिहास तुम कैसे जान गई ?

वासवदत्ता उस प्रतिहारी मालती को भूल गये जो नित्य तुम्हें भोजन ले जाती थी ।

उद्यन अरे हां उससे तो मैंने एक दिन कहा था तुमने मेरी बड़ी सेवा की । कोशाम्बी में तुम्हें अपनी पटरानी बनाऊंगा ।

वासवदत्ता और जिस रात तुमने भोजन नहीं किया वह लौटी थी रोती हुई । मेरे पूछने पर उसने सब कुछ कहा था... कहा था उसने, जो तुम्हारा कुछ अनिष्ट हुआ तो अवन्ती पाताल में धंस जायेगी ।

उद्यन (उत्सुक हो कर) ऐसा...तब...

वासवदत्ता मैंने उसे डाँटा और कहा क्या व्यर्थ की बात करती है । अवन्ती पाताल में एक बन्दी के कारण चली जायेगी...!

उदयन तब तो वह और भी...

वासवदत्ता उसकी हिचकी बंध गई.. उन लम्बी पतली नुकीली आंखों से मोती बरसा कर उसने कहा था... राजकुमारी जिस दिन देख लोगी यह धरती तुम्हारे लिये देवलोक बन जायेगी ।

उदयन (हंसकर) ऐसा कहा उसने ? तब कदाचित्त यह धरती उसके लिये देव लोक हो गई ।

वासवदत्ता हां...उसे विश्वास हो गया था कि तुम कोई देवता हो । किसी शाप के भोग के लिये धरती पर उतर आये हों ।

उदयन और तब तुमने अपने पिता के बन्दी को देखना चाहा । शाप भोग के लिये धरती पर गिरे देवता को ?

वासवदत्ता जो हो...सारी रात...करवट लेती रही । उसकी बातें कानों में रह रह कर जैसे गूंज जाती थीं...अवन्ती में एक से बढ़ कर एक रूपवान कुमार को उसने देखा था... देश विदेश के कितने सुन्दर पुरुष उसकी आंखों के नीचे आए, मुझे भी विस्मय हुआ । किसी की हँसी से चांदनी फैलना और फूलों की वर्षा होना...न जाने मंत्र मुग्ध सी वह क्या क्या कह गई थी ?

उदयन तब फिर मेरी हँसी उसके लिये इन्द्रजाल थी ... जिसमें मेरे भाग्य से देवी भी पड़ गई ।

वासवदत्ता उससे अधिक । इन्द्रजाल उसने बहुत देखा था । तुम्हारे यहां से लौट कर जाना ... उसके लिये किसी विस्मय लोक से लौटना होता था...जिसे इस धरती पर न कभी किसी ने देखा और न सुना । देह की सुध भी खो देती थी वह. हर दिन तुम्हारे पास उसके लिये नया परिहास ...नया विस्मय ... नया रूप और नया आकर्षण था ।

उसीने पहले मुझसे कहा था कि वीणा बजाने में तुम यक्षजन्मा हो... मतवाले हाथी तुम्हारे हरितकान्त के स्वरों में झूमते हैं ।

उदयन वीणा बजाते तो उसने मुझे देखा था । हाथी के वश करने की बात किसी दिन वह वृद्ध कंचुकी कर रहा था । कला का बन्दी कला के लिये तुम्हारे पिता का बन्दी हुआ ।

वासवदत्ता मुझे वीणा सिखाने का काम जो उन्होंने तुम्हें दिया । मुझ से यह कह कर कि सिखाने वाला बौना है और जिस रात अवन्ती के राज्यन्धों और श्रेष्ठियों के साथ उन्होंने तुम्हारी वीणा सुनी थी...

उदयन स्वप्न देख रही हो प्रिय !

वासवदत्ता छिप कर, बन्दीगृह के बाहर से । तुमने भीतर से द्वार लगा दिया था परन्तु वत्सराज किसी अन्य के लिये वीणा नहीं बजायेंगे ... कोई शक्ति उन्हें बाध्य नहीं कर सकती ... यह सभी जानते थे ।

उदयन देवी चिनगारी फूट पड़ी आंखों से ..

वासवदत्ता क्रोध न करें देव ! दूसरों के मनोरंजन के लिये नहीं अपने संतोष के लिये वीणा बजा रहे थे, जिसका विनोद और दैवी रूप उस बन्दी गृह की दीवारों को पार कर सारी अवन्ती पर छा रहा था ... पेरजन में जिसकी सब कहीं चर्चा थी अवन्ती की वारांगनाओं के भवन जिसके चित्रों से सजे थे ।

उदयन सुन चुका हूं प्रिये ! यह सब, और जब तुम कहने लगती हो जैसे रस की धार में बह चलता हूं । जैसे यह सब बराबर नया है उस रात उस बन्दी गृह के द्वार पर जब तुम्हें देखा ... ।

वासवदत्ता (हँस कर) क्या हुआ ... ।

उदयन सहसा विश्वास नहीं हुआ...वहां समुद्र कहाँ था जिसके भीतर से रत्नों में सजी लक्ष्मी निकली थी ।

वासवदत्ता उत्तरीय के रत्नों की बात कह रहे हो । रत्नहार तो मैं प्रहरी के गले में डाल आई थी...मुंह बाकर वह मेरी ओर देखता ही रह गया और सब तो मालती उसे पहले ही से बता चुकी थी ।

उदयन (हँस कर) और मेरा हाथ पकड़ कर जब तुम बाहर निकली ... उसकी आँखों में वही रत्नहार समा गया था...उसे कहीं कुछ सूझता ही नहीं था ।

वासवदत्ता (हँस कर) अवन्ती की राजकुमारी का रत्नहार उसकी गाँव वाली गंवार स्त्री के कंठ में पड़ेगा, इस लोभ के रंग में उसकी आँखें अंधी थीं.. जन्म भर खप कर उसे जो न मिलता, एक पल में मिल गया था ।

उदयन दुर्ग के द्वार तक तो वह साथ ही आया...बाहर निकलने पर 'घरो घरो' कहता उलटी दिशा में दौड़ पड़ा, पर अब वीणा उठाओ देवी !

वासवदत्ता मुझे लेकर भागने की उन बातों से अधिक रस वीणा देगी ।

उदयन इतनी देर सीधे तन कर संस्थागार में बैठा रहा...नसे तन उठीं...राज्य विधान में मन और बुद्धि को एकसाथ ...एक डोर में...उँह ! बड़ा कठिन है यह सब ...

वासवदत्ता आज तो देव...

उदयन फिर वही उदासी ? बात क्या है कहो भी ? आकाश के तारे तोड़ना चाहूँगा तुम्हारे संतोष के लिये मैं ।

वासवदत्ता आज तुम बजाओ...घोषवती आज मुझे फिर उसी तरह

बेसुध कर दे जैसा इसने अवन्ती के उस कारागार में किया था...जब मैं धरती के ऊपर...बहुत ऊपर पहुंच गई थी ।

उदयन प्रिये ! वह तो तुम्हें पा जाने की लालसा थी...प्रिया का अभाव मेरे अतल से निकल कर वीणा में बज रहा था ...वह लालसा अब कहां से ले आऊं ? कला और लालसा दोनों ...

वासवदत्ता क्या...

उदयन कला का सम्मोहन लालसा का सम्मोहन है, प्रिये ! इसमें मुक्ति नहीं बन्धन है ।

वासवदत्ता तो अब देव की लालसा मिट गई...तब मुझे भी किसी दिन गोपा बनना पड़ेगा (भारी स्वर)

उदयन हां...हां...फिर वही ? तुम्हारे नेत्र फिर भर आये ।

वासवदत्ता मेरे ही नहीं...देश में आज कोई रमणी नहीं है... जिसकी आखें न भरी हों । भाग्य से मैं आर्यपुत्र की पत्नी न होती...प्रियतम के साहस बल और बुद्धि का भरोसा न होता....तो इतना रोती इतना...

उदयन प्रिया के आसुओं का उपचार मैं जानता हूं ..इस हृदय और इन लम्बी बांहों का फल क्या...

वासवदत्ता नहीं.. नहीं...यह नहीं...यहीं रहने दें प्रभु ! भली हूं ।

उदयन यहां प्रिये ! अब ठीक हुआ...रोना हो तो मेरे अंक में रोओ ।

वासवदत्ता (संतोष के स्वर में) किसी दिन गोपा भी इसी तरह अंक में रही होगी...शाक्यकुमार गौतम का आचरण नहीं सुना क्या ?

उदयन सुना है । उनतीस बरस की आयु में पत्नी...पुत्र... राज्य और विभव छोड़ कर वे संन्यासी बने हैं ।

वासवदत्ता संन्यासी नहीं ... इसके लिये तो आयु निश्चित है...कम से कम साठ वर्ष भी तो चले होते ।

उदयन हां, राजर्षि के संन्यास की आयु यही है...पर कहा यही जायगा उनके लिये । संसार से विरक्ति संन्यास है । सुनते हैं वे मृत्यु जीतने निकले हैं...निर्वाण प्राप्त करेंगे वे ।

वासवदत्ता इसी से मेरी आखों में आंसू नहीं सूखते...पद्मावती सारा दिन रोती रही है । आज आहार भी नहीं लिया उसने, कौन कठोर होगी जो गोपा के दुःख में न रोय ।

उदयन तरुणी के पति भी मरते हैं । जगत् में जो नित्य हो रहा है उसके लिये रोना क्या प्रिये ! हंस तो दो अब मेरी ओर देख कर ।

वासवदत्ता नहीं...नहीं, मर जाने में चारा क्या । पर यह नित्य नहीं होता...भरे श्रौवन में लोग पुत्र और पत्नी नहीं छोड़ते । जो शाक्यकुमार के लिये संभव हुआ क्या दूसरे कुमारों के लिये असंभव होगा ?

उदयन अब समझा ... पद्मावती इसी भय में रो रही है कि मैं भी मुक्ति खोजने निकल पड़ूंगा और इसी लिये तुम भी देशी...पर मेरा जन्म परन्तप अर्जुन के कुल में हुआ है । इस शरीर में उन अपराजित का रक्त है जिनके धनुष की टंकार दिगन्तों में गूँजी थी .. कर्म की साधना में जिन्होंने कुरुक्षेत्र में शंखनाद किया था । एक शाक्य कुमार के आचरण से प्रकृति नहीं बदलेगी । भीष्म एक ही हुये और ये गोतम भी अकेले रहेंगे ।

वासवदत्ता कैसे कहूं...सब के पीछे चलने वाले मिल जाते हैं । लग रहा है किसी दिन गौतम की सेना चलेगी...जिसके हाथ में शस्त्र न होंगे ।

उदयन और जो कर्महीन होंगे । दूसरों के श्रम का फल लेगी मनुष्य अपने कर्म और निर्माण में श्रमर है । मृत्यु के बन्धन कर्म से कटते हैं । निर्वाण के लिये निर्माण करना होगा । प्रकृति जन्म में जो बीज धर देती है....वे समय पर उगते हैं ... फूलते हैं ... फलते हैं । उनका उगना वासना है ... फूलना प्रणय और फलना सन्तान । यह सब गौतम के लिये भी हो चुका है । केवल वे कर्म से भागे हैं । यह त्याग हो सकता है और कायरता भी ।

वासवदत्ता फिर भी यह हुआ कैसे... ?

उदयन गोपा का प्रेम वे न पचा सके होंगे (हँस कर) अधिक भोजन अपच करता है और तब भूख मर जाती है ।

वासवदत्ता हँसी का अवसर यह नहीं है...परिहास कर रहे हो...

उदयन तो क्या करूँ ... गौतम के आचरण की मीमान्सा ! जिससे तुम्हारी आखों में और मेरी आखों में रोष है । एक ही वर्ष और एक ही मास में मेरा और गौतम का जन्म हुआ था । गौतम मृत्यु से डरे हैं...मुझे मृत्यु से खेलना है । एक जांघ पर तुम्हें दूसरी पर घोषवती को रख कर ... आज कर्म और प्रणय के राग निकालूँ... जिसे तुमने कभी न सुना हो ।

वासवदत्ता कुमार और पद्मावती को भी बुला लो । नहीं इस जांघ पर कुमार रहेगा ।

उदयन और इस तरह मर्यादा की मेखला बनी रहेगी...ठीक है कुमार का जन्म तुमसे हुआ पर उस की माता पद्मावती बन गई ... तुम्हारी सौत ... तुम्हारा यह कार्य भी तो कुछ गौतम सा है ।

वासवदत्ता वह बेचारी अपने को कुमार से भर रही है, उसके सुख में ही मेरा सुख है, व्यक्तियों के सुख में परिवार...परिवारों

के सुख में ग्राम...ग्रामों के सुख में जनपदों और जनपदों के सुख में देश है। देखो आ भी गये दोनों। नटखट उसके वस्त्र खींच रहा है। अरे नंगी करेगा क्या उसे (पद्मावती और कुमार का प्रवेश)

उदयन ऐसा नहीं करते कुमार...मां के वस्त्र खींच रहे हो ?

कुमार (बालक की धोली) तात यह रोती रही है मैं भी रोया ... नहीं चुप होती कितना रोयेगी न तो मुझे ले कर उपवन गई...न कंदुक खेले...कहा कि जमुया चलो... वहां भी नहीं दिन भर मुझे पकड़ कर सिसकती रही। यह कंधा दुख रहा है। मैं अब इसे तंग करूंगा...रोओ अब तात भी देख ले तुम बड़ी वैसी।

उदयन अरे क्या कर रहा है छोड़ दे वस्त्र...नहीं,...नहीं यह नहीं करते बेटा ... आओ यहां मेरे पास मैं बीणा बजाऊं और तुम्हारी दोनों मां मेरे दोनों ओर रहें।

कुमार तात...उहूं आप नहीं बड़ी मां वही तो हर दिन बजाती हैं आप से न बजेगी। (सब एक साथ हँसते हैं)

उदयन आओ भी तुम्हारी बड़ी मां को किसने सिखाया ?

कुमार (विस्मय में) आप तो कभी नहीं बजाये ?

उदयन तुम्हारे जन्म दिन तुम्हारी मां को मैंने सुनाया था और आज सुनाऊंगा...आगे यह फिर कब होगा कौन जाने। पद्मावती ! परन्तप उदयन की प्रेयसी जो रोय ... फिर इस धरती पर धीर कौन रहेगी...दूसरी रमणी ? हां बैठो यहां इस जांघ पर तुम कुमार...इस पर बीणा रहेगी।

पद्मावती (गद्गद कंठ से) हे भगवान् ! देव भी रो रहे हैं।

उदयन पुत्र जांघ पर और तुम दोनों दो ओर सुख भी जब नहीं समाता आसू में बह उठता है प्रिये । [वीणा बजने लगती है उसका स्वर ज्यों ज्यों बढ़ने लगता है स्त्र और तन्मयता छा जाती है]

परिवर्तन

कुमार [संस्मारगिरि पर वत्सराज उदयन का कोकनद प्रासाद शाक्य मुनि ऊपर आसन पर बैठे हैं नीचे उदयन का पुत्र कुमार बैठा है । कुमार को श्रमण दीक्षा हो रही है]
 देव जब तक अभी इस जीवन की सांसें चल रही हैं... आपको मृत्यु विजय का ज्ञान मिल गया है आपने इस दास को शिष्य बनाया...आज यह दास धन्य है ।

बुद्ध सुविचार तुम्हारा कृपण हो... विश्वास, उदारता, नैतिक भावनाओं का तुम्हारा दुर्ग बने ... गुणों की सेना और कवच रहे धैर्य का...उद्योग भाला, ध्यान धनुष और अनासक्ति तुम्हारा बाण बने ।

कुमार और देव ! मेरा नाम अब क्या रहेगा ।
बुद्ध तो प्रियदर्शन ! तुम नाम का भी परिवर्तन चाहते हो ?
कुमार हां भन्ते ! सब कुछ बदल जायगा पर नाम नहीं ?
बुद्ध तो फिर ठीक है जिसमें तुम्हें सुख मिले...तुम्हारा नाम भी बदले । अब तुम्हारा नाम बोधिकुमार रहा ।

कुमार सबसे पहले इस नाम का सम्बोधन श्री मुख से करें भन्ते ।

बुद्ध बोधि कुमार तुम्हें यश मिले ।

कुमार बुद्धम् शरणम् गच्छामि...धम्मं शरणम् गच्छामि...संघम् शरणम् गच्छामि ।

बुद्ध प्रियदर्शन ! अब तो तुम्हारी कामना पूरी हुई ।

कुमार आज मेरे भाग्य के कपाट खुले हैं। मैं अब संघ में रहूंगा।

बुद्ध संघ, तुम्हारी कौशाम्बी जा रहा है, मेरा यह चातुर मास वहीं होगा।

कुमार मैं भी साथ चलूंगा।

बुद्ध अपने पिता की राजधानी में तुम संघ में रहोगे ?

कुमार हां भन्ते ! पिता का संबन्ध तो अब मेरा टूट गया।

परिवर्तन

[कौशाम्बी के राज प्रासाद का वही कक्ष। उदयन, पद्मावती, वासवदत्ता चिन्तित बैठे हैं।]

उदयन जो कार्य तथागत ने अपने पुत्र राहुल के साथ किया वही कार्य तुम्हारे कुमार के साथ उन्होंने ने किया देवी ! इस में उन्हें दोष क्या दें ?

पद्मावती इतने दिन जिसे प्राण में छिपाया...वह यहां आया भी नहीं देव [रो पड़ती है।]

वासवदत्ता यह क्या कर रही हो बहन ! तुम्हारे आसुओं से उनका ज्ञान नहीं बढ़ेगा और अब तो उसका नाम बदल गया है। अब वह कुमार नहीं... बोधिकुमार है। पिता और माता को भूल कर वह मुक्ति लेगा [स्वर भारी हो उठता है]

उदयन खेद न करो देवी ! ...मैं उसकी रक्षा करूंगा...तथागत ने बिना मेरी आज्ञा के उसे दीक्षा दी है। मेरे...पर्वत के ढिगने पर प्रलय होगा।

पद्मावती पर किस तरह...सोच नहीं पानी मैं...

उदयन समझ जाओगी प्रिये ! पुत्र के लिये मैं अपनी बलि दूंगा। मैं पैंतालिस वर्ष का हो चुका ... पन्द्रह वर्ष और

फिर मैं संन्यास लेता ही भरत कुल की यही प्रथा है ।
तथागत कौशाम्बी में आ गये हैं ... इस महानगरी में
अकेला मैं हूँ जिसने उनका दर्शन नहीं किया और नहीं
करूंगा मैं ।

वासवदत्ता हाय कैसी बलिदेव ! मैं प्राण छोड़ दूंगी कुमार गया तो
जाय देह की उस मैल के लिये कौन चिन्ता करे ?

उदयन पुत्र के लिये पिता क्या नहीं करता देवी ! तुम धीरज
धरो तुम्हारे हिलने पर मेरा संकल्प हिल जायगा ।

वासवदत्ता क्या है ? कैसा है संकल्प ? [भय का स्वर]

उदयन डरो मत तुम । पुत्र को लौटा कर उसकी जगह मैं संन्यास
लूंगा ... उसके संतोष के लिये तथागत से नहीं पिन्डल
भारद्वाज से पूछूँ ।

पद्मावती कौन है यह पिन्डल ।

उदयन कभी इसी कौशाम्बी में ज्योतिषी था । ज्योतिष से सिद्धियाँ
नहीं मिलीं अब श्रमण बन गया ।

वासवदत्ता हां हां कुमार इसी के चक्र में आ गया । इसी ने बहका
कर उसे श्रमण बनाया ।

उदयन वह यहां आ रहा है उस पर क्रोध न करना देवी ! नहीं
तो घर आये अतिथि का अपमान होगा ।

पद्मावती अतिथि ... यमराज है आर्य पुत्र ! वह यमराज है उसने
... (कंठ रुन्ध जाता है) ।

उदयन यमराज भी जिस दिन यहां आयगा उस दिन मैं उसका
स्वागत करूंगा...हां...देखो मैं तुम दोनों के साथ हिमा-
लय की ओर चल पड़ूंगा । हम संन्यासियों का जीवन
बितायेंगे । पुत्र के लिये समझ लो ... नहीं तो संन्यासी
मैं समय पर बनता ।

पद्मावती धन्य देव ! पर जो कुमार न सुनै ...
उदयन मन्त्री को भेजा है तथागत से पूछने को ... बिना मेरी आज्ञा के कुमार को दीक्षा क्यों दी उन्होंने ? ऐसी दीक्षा में माता पिता की आज्ञा का नियम उन्होंने ने बनाया था... वे स्वयं यह नियम क्यों तोड़ बैठे ?
 (प्रतिहारी के साथ मंत्री, कुमार और पिन्डल भारद्वाज का प्रवेश)

प्रतिहारी मंत्री, कुमार और पिन्डल भारद्वाज देव !
उदयन यहीं भेजो (आगे जाने की ध्वनि)
पद्मावती कुमार किस रूप में होंगे ?
वासवदत्ता सिर मुंडे ... देह पर कौशेय वस्त्र ... हाथ में ...
पद्मावती हाथ मेरी आंख फूट जाती ... मैं न देखती यह ...
उदयन इतनी अधीर न हो तुम...
वासवदत्ता आर्य पुत्र !...याद है मैंने क्या कहा था...जो शाक्य कुमार से संभव हुआ...दूसरों से संभव न होगा ?
उदयन हां, फिर भी इस आचरण का भार धरती अधिक दिन न ढोयेगी। प्रवाह रोका नहीं जाता...प्रकृति में जब उस का बल कम पड़ता है अपने ही रुक जाता है। यह श्रमण प्रवाह भी रुकेगा। पता नहीं कितनों को बहा कर कितनों को बोर कर। स्वागत मित्र भारद्वाज इस आसन पर बैठिये।

पद्मावती हाथ इस वेष में बेटा !...[रो पड़ती है]
उदयन हां...हां माता के आंसू नहीं प्रिये ! पिता के साहस का अवसर है यह। कुमार ! अरे नहीं बोधिकुमार।
कुमार क्या हैं देव !
उदयन मुक्ति पहले मुझे या तुम्हें बोलो...

- मंत्री** तथागत ने आपकी बात मान ली । आपकी बिना आज्ञा दीक्षा देने का खेद उन्हें है । उन्होंने नियम किया अब आगे फिर कभी किसी किशोर को तब तक दीक्षा न देंगे जब तक उसके माता पिता आज्ञा न दें ।
- उदयन** फिर भी दीक्षा खेल नहीं है...जब चाहा बांध लिया जब चाहा खोल दिया । तथागत को अपने नियम ढीले करने होंगे । बोधि कुमार कौशाम्बी का शासन करेगा ... यह गृहस्थ बनेगा । नाम इसका यही रहे जो तथागत ने दिया...बोधिकुमार ... पर कर्म इसके वही होंगे जो इस अवस्था के किसी तरुण के होते हैं ।
- भारद्वाज** राजन, पर यह कैसे होगा ?
- उदयन** कठिन नहीं है श्रमण ! इसके स्थान पर यदि मैं भिक्षु बनूं और मेरी रानियाँ भिक्षुणी ।
- भारद्वाज** तथागत आपके भिक्षु बनने के प्रस्ताव को नहीं मानेंगे ।
- उदयन** मैं सब कुछ तथागत के आदेश से नहीं करता । उदयन व्यक्ति की पूजा नहीं करेगा चाहे वह स्वयं तथागत हों । हमारे संन्यास और बौद्धों की विरक्ति में भेद नहीं । पुराने संन्यास का यह नया रूप है, पर श्रमण ! बालकों और युवकों को विरक्त बनाना प्रकृति के साथ अनाचार है । प्रकृति इसे सह न सकेगी...तुम्हारे संघ उत्तेजना के मंद पड़ने पर वासना की बढ़ में डूब जायेंगे ।
- भारद्वाज** भविष्यवाणी कर रहे हो राजन !
- उदयन** मैं नहीं रहूंगा तुम भी नहीं रहोगे श्रमण...भविष्य में जो आयेंगे...देखेंगे मेरी भविष्यवाणी सत्य हुई या नहीं ?
- भारद्वाज** तो तथागत से कह दूं कि परिव्रजित को आप फिर गृहस्थ बना रहे हैं ।

उदयन जी, उस को जिस के सारे कर्म अभी शेष हैं... कर्मों से भाग कर जो निर्वाण के दल दल में फंस रहा है... हो गया भिक्षु अब आप जायें। और मंत्री आप भी।

(दोनों का प्रस्थान)

वासवदत्ता कुमार...

कुमार माँ

वासवदत्ता क्या कर गये तुम !

कुमार मैं कुछ नहीं जानता तथागत की बातें ठीक लगीं... तात् की बातें भी ठीक लग रही हैं।

उदयन न तथागत की न मेरी ... प्रकृति की ... प्रकृति भी कुछ कहती है उसे सुनो और उस पर आचरण करो।

पद्मावती अथाह समुद्र से निकल रही हूँ।

उदयन (हंस कर) सपने में न पड़ो देवी ! कुमार ने जो आचरण किया हम तीन उसका प्रायश्चित्त करेंगे।

कुमार क्या ...

उदयन आज संध्या से पहिले हम तीनों यह राजभवन छोड़ देंगे ... तुम्हारी जगह हम संन्यास लेंगे।

कुमार मुझे छोड़ कर तात् ...

उदयन हां तुम हमें छोड़ रहे थे... जो प्रकृति के विरुद्ध था हम तुम्हें छोड़ रहे हैं, यह प्रकृति के अनुकूल है। संन्यास का अर्थ है कर्मों से मुक्त होना... उसका दूसरा नाम मृत्यु भी है इसके अधिकारी हम हैं पुत्र !

कुमार आह यह प्रासाद... मुझ अकेले को...

उदयन मंत्री तुम्हारे साथ रहेंगे ... सभी राजन्य, कोशाम्बी के नागरिक मुझे छोड़ कर चले गये तात् शतानिक और माता भी उन के साथ ही गई हिमवान की दिशा में राजपरियों का मार्ग वही है।

परिवर्तन

(सम्राट कनिष्क और अश्वघोष कोशाम्बी के पास खड़े हैं)

कनिष्क क्या लिखा है इस स्तंभ पर कवि ! देवप्रिय अशोक का क्या आदेश है इस पर... ?

अश्वघोष जो भिक्षु भिक्षुणी संघ में भेद डालेगा...नियम तोड़ेगा या हीन आचरण करेगा श्वेत वस्त्र पहना कर संघ से बाहर किया जायगा ।

कनिष्क इस का अर्थ कि देवप्रिय अशोक के काल में ही संघ में हीन आचरण होने लगा था ।

अश्वघोष जी हां तभी तो यह शासन खुदा...

कनिष्क कवि... !

अश्वघोष कवि नहीं भिक्षु सम्राट !

कनिष्क तो फिर मैं भी भिक्षु हूं । बौद्ध धर्म ग्रहण करने के बाद भी जो मैं सम्राट हूं तो तुम कवि हो । अपने काव्य में नारी रूप का जो मोहक वर्णन तुमने किया है किस भिक्षु की आखों में उतरेगा ?

अश्वघोष तथागत ने नारी मोह सब से पहले छोड़ा पर आज...किस भिक्षु के लिये नारी सुलभ नहीं है ?

कनिष्क मैं प्रतिज्ञा करता हूं कवि कि मैं संघ को फिर से शुद्ध करूंगा...भिक्षुओं और भिक्षुणियों के विकारों को रोकूंगा पर कवि इस में तुम्हारा योग होगा ।

अश्वघोष आपके आदेश मेरे सिर आखों पर रहेंगे ।

कनिष्क इस कार्य के लिये, संघ के शोधन और संचालन के लिये तुम्हें कौशाम्बी छोड़ कर कुण्डल वन चलना पड़ेगा । यहाँ भिक्षुणी बुद्धिमित्रा के नाम से बोधि सत्व की स्थापना तुमने कर दी तथागत का धर्म चक्र जहाँ सबसे पहले चला उस

पवित्र भूमि में भी इससे बड़े बोधि सत्व की स्थापना में तुम योग दे चुके। अब केवल एक कार्य है वह तुम्हारे योग से कुण्डल वन में हो।

अश्वघोष मुझे श्रेय न देकर बस आदेश दें राजन् !

कनिष्क कुण्डल वन में हम सद्धर्म की सभा कर धर्म के रूप और नियमों का एक बार फिर निश्चय करें...

अश्वघोष साधु देव ! देव प्रिय अशोक के बाद धर्म में आपकी ही निष्ठा रहेगी।

कनिष्क यहां और भी कोई स्थान दर्शनीय है ?

अश्वघोष जी आगे बढ़ें यहीं समीप में...वह घोषिता राम है जहां तथागत के चरण पड़े थे।

कनिष्क हां चलो...

अश्वघोष आ गये यह सामने जो वेदी बनी है तथागत का नवां चातुर्मास यहीं बीता था।

कनिष्क यह फूल किसने चढ़ाये हैं ?

अश्वघोष मेरी दिनचर्या का पहला कार्य यही होता है राजन् पहले मैं यहां फूल चढ़ा लेता हूँ...

कनिष्क तुम्हारे भाग्य...

अश्वघोष बराबर...मन में जब कोई शंका उठी मैं इस वेदी की ओर वैसे ही देखता हूँ जैसे शिष्य अपने गुरु की ओर...यह वह भूमि है जिस पर सम्राटों के और संघ के महापुरुषों के सिर बराबर झुके।

कनिष्क मेरा मस्तक भी पवित्र हो कवि ! इस भूमि की रज से...

परिवर्तन

“कौशम्बी का प्रासाद । सामने विस्तृत भूमि में युद्ध के बाजे बज रहे हैं शंख, तूर्य की ध्वनि आकाश भेद रही है । सैनिक वेष में अच्युत नाग, नागसेन और गणपति नाग खड़े हैं ”

गणपतिनाग नागसेन प्राण महंगा है या स्वाधीनता ।

नागसेन स्वाधीनता भद्र ! क्या कहते हो अच्युत ?

अच्युत इसे क्या इस अर्धक्षत्रिय समुद्र गुप्त को बताना है । कुशाबों से देश को स्वतन्त्र किसने किया ? काशी के दस अश्वमेध किसके साथी हैं ? जन्म भूमि को स्वतन्त्र करने के समय इस दम्भी के पूर्वज किस खोह में छिपे थे ? विदेशी कुशाण जब जन्म भूमि का चीर हरण कर रहे थे इसके पूर्वज नरक के किस गहरे तल में थे । सोच लिया नागसेन गणपति ! अभी कुछ और पूछना है ।

गणपति शत्रु की सेना समुद्र सी उभड़ती आ रही है संख्या में दसगुनी है ।

नागसेन फिर भी हम पीछे नहीं हटेंगे...

गणपति नहीं क्षत्रिय पीछे नहीं हटता...संकल्प करो यहीं खेत रहोगे । ऊपर देख रहे हो सूर्य का पिण्ड...हमें मर कर उसी तेज में मिलना है वीर की अंतिम गति वही है ।
(कोलाहल शंख और भेरी की ध्वनि)

अच्युत शत्रु आ गये फूँको शंख गणपति और आगे बढ़ो प्रिया के आलिंगन से मधुर है यह शत्रु का आलिंगन...
(घोर कोलाहल नेपथ्य में समुद्रगुप्त की जय । गणपति अच्युत और नागसेन की जय-शस्त्रों की झंकार)

समुद्रगुप्त आचार्य... !

- वसुबंधु** इस युद्ध से दुखी हूँ मैं सम्राट ।
- समुद्रगुप्त** राजधर्म से विवश था आचार्य नहीं तो तीनों नाग वीर थे । विदेशियों से इनके पूर्वजों ने देश की रक्षा की थी । देव-प्रिय अशोक के शासन स्तम्भ पर इन तीनों वीरों के मरने की प्रशस्ति मैंने विजय के दम्भ में नहीं लिखी ।
- वसुबंधु** होगा इसमें कोई राज धर्म मिश्र को उसका क्या पता...
- समुद्रगुप्त** आचार्य मैं बौद्ध नहीं हूँ, फिर भी विद्वानों का सेवक हूँ । इन नाग वीरों की आज की वीरता मेरी इस प्रशस्ति में अमिट रहेगी और...
- वसुबंधु** और क्या राजन् देश के सभी यशस्वी विद्वान विचारक कवि और गायक अयोध्या पर क्या कर रहे हैं क्या आप और आपके बंधु असंग की भी कृपा मुझ पर होगी ।
- वसुबंधु** हम दोनों भाई बौद्ध हैं ।
- समुद्रगुप्त** ज्ञान और विद्या, कला और संस्कृति धर्म और सम्प्रदाय के भेदों के ऊपर है । समुद्रगुप्त कवियों और विद्वानों का सेवक है ।
- वसुबंधु** अच्छा राजन् आपकी उदारता किसी दिन वह अवसर देगी ।
- समुद्रगुप्त** इस युद्ध से सारा उत्तर और मध्य देश एक राजसत्ता के नीचे आ गया । युद्ध छोड़ कर अब विद्या और कला की साधना यह सेवक करेगा...
- वसुबंधु** आपका मनोरथ सफल हो ।

परिवर्तन

(यमुना के तट पर कौशाम्बी का ध्वंसावशेष । सम्राट हर्ष वर्धन चीनी पर्यटक ह्वेनत्सांग के साथ ध्वस्त प्रासाद के ढँचे टीले पर खड़े हैं)

- हर्षवर्धन** मित्र ! जहां तुम खड़े हो वहीं...वत्सराज उदयन का राज प्रासाद था काल की लीला देखो उसकी जगह आज यह दूह है ।
- हुयेनच्चांग** इसीलिये तो संसार में लिस नहीं होना है राजन् ! तथागत संसार की नश्वरता से ही सब कुछ छोड़ने को कह गये ।
- हर्षवर्धन** फिर भी नश्वरता बनी है और संसार अपनी गति में उसी तरह जन्म लेता है, मरता है । यह दिन मेरे जीवन में सब से बड़े सुख और संतोष का है इस भूमि के गर्भ में उदयन का प्रेम और तथागत का त्याग मिल कर एक हो गये हैं ।
- हुयेनच्चांग** मेरे जीवन का भी आज पुण्य पर्व है । इसी कोशाम्बी में तथागत के तीन सुत कहे गये ।
- हर्षवर्धन** सामने देखो भद्र वहां जमुना से सट कर वह ऊंची भूमि धनपति घोषित के धन से घोषिताराम वहीं बना था जिस में तथागत उतरे संघ की नींव पड़ी ।
- हुयेनच्चांग** कजिष्क ने जिस धरती पर माथा टेका, अश्वघोष ने जहां बुद्ध चरित्र की रचना की...वसुबंधु और असंग जिस मिट्टी से ज्ञान के रत्न निकालते रहे । मेरे अपने देश के फाहियान ने जिस तीर्थ की यात्रा की उस समय यमुना तट का यह घोषिताराम अभी भौतिक और आध्यात्मिक से भरा था ।
- हर्षवर्धन** यही काल की लीला है मित्र । जो आज है कल नहीं ।
- हुयेनच्चांग** राजन् आप किसी भाव में भूल कर जैसे बीमार हो उठे हैं । आप की आकृति का रंग हर पल बदल रहा है ।
- हर्षवर्धन** उदयन और वासवदत्ता के प्रेम और प्रणय की कहानियां इस धरती में गड़ी पड़ी है ।

- हुयेनच्चांग और जैसे आप उन्हें देख सन रहे हैं। आपकी आंख यही कह रही है... ललाट से उसी की किरणें फूट रही हैं।
- हर्षवर्धन कल्पना की आंखों से मैं वह सब देख रहा हूं। उदयन की घोषवती की ध्वनि इसी वायु मंडल में कहीं खो गई है। क्यों मित्र ?
- हुयेनच्चांग कहिये क्या सोच रहे हैं ?
- हर्षवर्धन मेरे मन में प्रेरणा उठ रही है।
- हुयेनच्चांग किस बात की ?
- हर्षवर्धन उदयन के चरित्र पर कोई नाटक लिखूं।
- हुयेनच्चांग पर क्या आप नहीं जानते वत्सराज तथागत के विरोधी थे ?
- हर्षवर्धन कला और कल्पना में विरोध मिट जाता है। उदयन बौद्ध न होकर भी मानवी गुणों में महान्। हे मित्र।
- हुयेनच्चांग कोई बात नहीं जिस चरित्र से प्रेरणा मिले उसे वाणी से व्यक्त करना मनुष्य का सब से बड़ा निर्माण है।
- हर्षवर्धन यह भूमि धर्म और तत्व की ही नहीं कला और कविता की भी तीर्थ है यह भूमि आज मौन है पर मुझे विश्वास हो रहा है कभी यह बोलेगी।
- हुयेनच्चांग कब... ?
- हर्षवर्धन (गम्भीर स्वर में) किसी दिन... जब ये दूह मिट जायेंगे और इन के भीतर की छिपी निधि प्रकट होगी। तब यह कौशाम्बी फिर बोलेगी।

३

विदिशा

पात्र और पृष्ठभूमि

—:O:—

- अग्निमित्र कालिदास के ' मालविकाग्नि मित्र ' नामक, विदिशा का
 सुंग सेनापति वयस्क
- वसुमित्र अग्निमित्र का पुत्र यवन विजयी, किशोर
- धारिणी अग्निमित्र की पटरानी, वसुमित्र की माता
- विक्रममित्र वसुमित्र का वंशज, शकों से उज्जयिनी का उद्धार
 करने वाला
- हलोदर यवन राजदूत
- कालिदास संस्कृत के महाकवि
- वासन्ती काशी के बौद्धराजा की कन्या, कालिदास की प्रेमिका
- मान्धाता विदिशा का प्रधान रक्षक
- विक्रमादित्य कालिदास के मित्र । अवन्ती के उद्धार में विक्रममित्र के
 शिष्य ।

[मेघदूत में कालिदास ने विदिशा को राजधानी शब्द से विभूषित किया । सुंग काल में अवन्ती, पाटलीपुत्र और साकेत जैसी महानगरियों के रहते भी उस पुत्र की राजनीति और धर्मनीति का संचालन विदिशा से होता रहा उस इतिहास के तीन चित्र ।]

[विदिशा के राजभवन से लगा प्रमदवन प्रियंगु शिला पर अग्निमित्र और धारिणी । पृष्ठ भूमि में मन्द संगीत । रह रह कर जयघोष और शंख ध्वनि]

धारिणी आर्य पुत्र !

अग्निमित्र प्रिये !

धारिणी यह उत्सव कब तक चलता रहेगा ? तीन दिन और तीन रात बराबर एक क्रम से ... विदिशा के नर, नारी, बालक, वृद्ध, गृही और ब्रम्हचारी कोई भी नहीं सो रहा है । कितने दिन हर्ष का यह समुद्र हिलोरे लेगा । पलक गिराने का संयोग तीन रातों से नहीं मिल रहा है । विदिशा की नींद भाग गई है ... भूख मिट गई है ।

अग्निमित्र देश की मुक्ति का यह अवसर है प्रिये ! मातृ भूमि की स्वतंत्रता का यह उत्सव है । पांचाल, मथुरा, मध्यमिका, साकेत और गोमठ को ध्वंस कर विक्रान्त यवन कुसुमपुर की दीवारों से टकराये थे । उनके घोड़ों की खुरों से पृथ्वी की छाती फटी थी । यमुना गंगा और सरयू के जल में उनके शस्त्रों का रक्त धुला था ।

धारिणी (हंसकर) अब तो यवन भाग गये । देव के सैनिकों के शस्त्रों का रक्त सिन्धु में धोया गया । फिर यह बाँह क्यों फड़क रही है, गनगना कर कांप रहे हो । रोयें खड़े हो गये हैं यह देखो ... अपनी बाँह । एक एक रोम तन उठा है ।

- अग्निमित्र** यवन कुसुमपुर से टकराये थे । हमारी सेना शाकल से जा टकराई । इन यवनों को देश के बाहर कुभा के उस पार कर देना ही ठीक होता पर ...
- धारिणी** तो अब बाधा क्या है नाथ ?
- अग्निमित्र** यह आक्रमण शाकल के दत्तमित्र ने किया था तक्ष-शिला और कापिशी के यवन इसमें तटस्थ रहे । केवल शाकल के यवनों को बाहर कर देने पर भी तक्षशिला और कापिशी के यवन तो रह ही जायेंगे ।
- धारिणी** वे भी विदेशी हैं ! वे भी किसी दिन शस्त्र के बल से ही घुसे थे --- नहीं तो ... कहां उनकी यवन-भूमि और कहां यह भारत देश ?
- अग्निमित्र** फिरभी अब वे इसी देश के बन गये हैं । देवप्रिय अशोक ने धर्म विजय के बहाने देश की रक्षा भुला दिया और उन महा पुरुष के वंशजों ने देश को विदेशियों की दया पर छोड़ दिया । जानती हो ... बृहद्रथ ने ही दत्तमित्र को निमंत्रित किया था उन सभी नगरों और स्थानों के नाश को ... जहां वैदिक धर्म सिर उठा रहा था ।
- धारिणी** मैं खी हूं ... राजनीति क्या जानूं । फिर भी यह बात कौन नहीं जानता ।
- अग्निमित्र** तब तुमने नहीं सुना (धीमी हंसी)
- धारिणी** (उत्सुक हो कर) क्या... ?
- अग्निमित्र** तक्षशिला के यवन राज ने तुम्हारे विजयी कुमार वसुमित्र से शैव मंत्र की दीक्षा ली है (हंसता है)
- धारिणी** (विस्मय में) अरे ! ... उस बालक से ... जिसकी अभी रेख नहीं भीनी ।
- अग्निमित्र** प्रिये तुम धन्य हो । तुम्हारे शरीर से यवन विजयी कुमार वसुमित्र ने जन्म लिया । पार्वती ने देवकुमार कार्तिकेय

को जन्म दिया था तुमने कुमार वसुमित्र को जन्म दिया ।
जिसे तुम बालक कह रही हो वह शास्त्र और शस्त्र दोनों
में अजेय है...क्यों...?

धारिणी नहीं, नहीं...रहो...यह क्या ... विजयी पुत्र के पिता...
मुझे पार्वती बना कर...तुम्हें शंकर बनना पड़ेगा । मृत्यु-
जयी शंकर...विषपायी शंकर...योगिराज शंकर...इन्द्रिय
जयी शंकर । तभी मैं पार्वती बनूंगी और तभी वसुमित्र
कर्ति य होगा । (धीमी हंसी) ।

अग्निमित्र विजय और कीर्ति में भी उन्माद होता है प्रिये ! यवनजयी
वसुमित्र को जन्म दे कर भी हम एक प्राण दो देह हैं ।
ठीक उसी तरह...जैसे शंकर और पार्वती । श्रमणों ने
यही तो नहीं समझा । पति और पत्नी...धर्म मूलक
आचरण...स्नेह कर्तव्य और प्रणय, वे अज्ञान के मद में
दूर फेंक गये और फिर केवल काम और लालसा की बाढ़
में आप डूबे और फिर देश को भी डुबा गये ।

धारिणी अच्छी बात...तब एक क्यों रहे दोनों बाहें मेरे कंठ में...

अग्निमित्र सुख की घड़ी में...विजय और आनन्द की घड़ी में...
पुरुष...सहारा चाहता है देवी ! नहीं तो फिर वह...

धारिणी (हंसकर) क्या हो जायगा । नींद आ रही है सुला
दू...।

अग्निमित्र अपने भार से...विजय और विभव के भार से...दब कर
मर जायगा वह । इसी से पुरुष की विजय नारी की
विजय है । अपना सब कुछ उसे सौंप देता है वह ...
जिसे पाकर वह फिर कुछ भी पाना नहीं चाहता...कर्म
की प्रेरणा जहां प्रणय बन जाती है । आज फिर वही
उन्माद छा रहा है...वही जो इस विजयी पुत्र के जन्म
के पहले छाया करता था ।

धारिणी (परिहास में) तब क्या तुम आज फिर से किशोर बन रहे हो...पुरुष हो तुम...चालीस लग रहे हैं तुम्हारे... बन सकोगे तुम किशोर....पर मैं अब किशोरी क्या बनूंगी ?

अग्निमित्र प्रणय न मरता है न वृद्ध होता है...जब तक अभी वह है...मैं किशोर और तुम किशोरी हो ।

धारिणी देख रही हूं...तब जो संयम था तुम में...

अग्निमित्र पच्चीस...ऐं—और....नहीं तेइस वर्ष ही तो मैं ब्रह्मचारी रहा । दो वर्ष उसके जो शेष रह गये थे...और धर्म तो यह है...चालीस क्या अस्सी तक यौवन चले । तुम यह सोच रही हो...यवनजयी पुत्र का पिता प्रिया के शरीर का दुलार क्यों कर रहा है । वह सूख कर काठ क्यों नहीं हो जाता । यह संयम नहीं मृत्यु को निमंत्रण देना है ।

धारिणी (उद्वेग में) हां....हां...क्या कह रहे हो । हे भगवान् ।

अग्निमित्र (गम्भीर ध्वनि) मृत्यु के नाम से पीली पड़ गई प्रिये ! क्या है यह ? तुम चाहती हो मैं अमर बना रहूं....तो फिर उसके लिये...जब तक सम्भव हो....जब तक यह शरीर रहे...मुझे युवा बना रहना पड़ेगा । सुख में, दुख में तुम्हारे शरीर का सहारा ही मुझे अडिग रहने देगा। नहीं तो फिर जब प्रेम का यह आधार गया...बुढ़ापा घेर लेगा और उसके बाद...

धारिणी बस...बस...कुछ न कहना अब...मैं सिर पीट लूंगी...

अग्निमित्र तब तो तुम्हें किशोरी बना रहना पड़ेगा हंसी नहीं करता हूं प्रिये ! जीवन का यही आग्रह है...मेरी किशोरी...

धारिणी अरे । आंखों की बरौनियां....

- अग्निमित्र** कहता हूँ यही जीवन का आग्रह है...शतम् जीवामि...
सौ वर्ष जीने के लिये...
- धारिणी** तरुण रहना पड़ेगा...सत्तर...पचहत्तर....अस्सी वर्ष तक।
शरीर के बल से...शस्त्र के बल से...विद्या के बल से
कोई तरुण नहीं होता। ऊँ...हूँ...हंसी क्यों रोके रहे हो ?
तरुण होने के लिये हंसना भी होता है। क्यों...क्यों।
(दोनों की हंसी)
- अग्निमित्र** पत्नी का प्रेम...वह अमोघ औषधि है जो तरुण रखता है।
अमणों ने बालकों को बूढ़ा बनाने का नियम बनाया...
जिस अवस्था में प्रकृति के जो कर्म हैं...उससे दूर कर...
देश का संहार उलट पलट कर करते रहे। किशोर भिक्षु
और किशोरी भिक्षुणी मुक्ति की यह सेना वासना के दल
दल में धँस गई।
- धारिणी** क्या हो रहा है यह आज। बातें इतनी बड़ी...आंखों में
यह क्या चल रहा है।
- अग्निमित्र** प्रिये...!
- धारिणी** कहो भी....इस तरह हर पल...आखें मूंद रहे हो...
- अग्निमित्र** मन करता है ऐसे ही सो जाऊँ...बीस दिन...रात पलके
न गिरी और जब बसुमित्र आ जायगा नींद भाग जायगी।
- धारिणी** खुले आकाश के नीचे...प्रमदवन की प्रियंगु शिला पर...
अभी एक पहर दिन है नींद क्या आयेगी। थकान है
इतने दिनों की चिंता और उत्तेजना नींद नहीं है यह ...
- अग्निमित्र** जो हो चिंता के मिटाने से देह के जोड़ ढीले पड़ रहे
हैं। मुझपर इन दिनों...क्या बीती है...तुम नहीं
जानती।
- धारिणी** नहीं जानती। भूख नींद और स्त्री को भी छोड़ कर...
केवल पुत्र की चिंता में...जो एक पल वर्ष की तरह

काटता रहा ... जिसे इसी देह से जन्म दिया ... सोलह वर्ष भी अभी जिसके पूरे नहीं हुये वही इस भयानक युद्ध में गया। माता हो कर जितनी नहीं घुली में उतने तुम पिता हो कर घुल गये कहते हो। मैं नहीं जानती मुझे रोती देख कर तुम और भी देह छोड़ दोगे ... इसी से छिप कर आंसू निकाले हैं। (स्वर भारी हो उठता है)

अग्निमित्र अरे...नहीं...नहीं...इन आंखों के आंसू मेरा मर्म हिला देते हैं। और फिर...अब तो वसुमित्र का रथ एक योजन और है...आ ही गया वह अब...बस....

धारिणी (उत्सुक हो कर) सच...कैसे जानते हो !

अग्निमित्र हम जब यहां आये दो योजन की दूरी पर वसुमित्र था...आचार्य पतंजली उसके रथ पर हैं।

धारिणी ('विस्मय में') आचार्य पतंजलि। ऐं...

अग्निमित्र हां प्रिये ! आचार्य पतंजलि वेद और विद्या के अगाध समुद्र...वसुमित्र को केवल माता का अभाव रहा है... पिता से बढ़ कर तो वे थे ही।

धारिणी (भारी स्वर) बराबर उसके साथ रहे हैं मेरा पुण्य...

अग्निमित्र बराबर... उसी रथ पर...युद्ध भूमि में भी और विश्राम शिविर में भी। वसुमित्र कहेगा...आचार्य ने उसे अपनी पलकों में रखा।

धारिणी आचार्य के तप के बल से इस युद्ध में विजय मिली है आर्यपुत्र !

अग्निमित्र आचार्य का तप और तुम्हारे पुण्य बल देवी। वसुमित्र की माता का यश...देश के हर नर, नारी, बालक वृद्ध की जीभ पर है। मन में आज वही उमंगे हैं जो उसके जन्म के पहले थीं। मन कहता है तुम्हारे चरणों में लोट जाऊं।

धारिणी दासी के चरणों में स्वामी नहीं लोटते देव ! तुम्हारे चरणों में जो मेरी निष्ठा थी...वही रण में पुत्र का कवच बनी है । मेरा पुण्य, मेरा धर्म, मेरा भाग्य भी इन्हीं चरणों की सेवा है ।

अग्निमित्र पुत्रकी आने की बात सुनकर मेरे संयम का बांध टूट गया...रोम रोम में तुम्हारे आदर का कंपन भर गया । किसी भी तरह मन न रुका जब तुम्हें ले कर यहां... शरीर की थकान...मन की चिंता हवा हो गई क्या हो रहा है इस मन में बंद कर लू तुम्हें आंखों में या...

धारिणी हैं...हैं यह क्या तुम्हारी आंखों में आंसू । दासी कब किस समय चरणों से दूर है । इतने अधीर तो तब नहीं बने जब भेजा उसे युद्ध में ।

अग्निमित्र कर्तव्य और पौरुष की उत्तेजना थी तब प्रिये ! अब वह मिट गई शरीर के बंध बंध ढीले पड़ गये हैं । आंखों में तुम्हारा रूप, कानों में तुम्हारी वाणी, मन में तुम्हारा प्रेम और सब भुल जाय ।

धारिणी हां ठीक है...इसी तरह...इसी तरह...नहीं सिर म उठाओ रहने दो यहीं जांघ पर पति का सिर इससे बड़ा भाग्य और पुण्य होता क्या है ? इसी पुण्य से पुत्र विजयी है... इसी पुण्य से मेरा यश है । पर वैसे नहीं...कुछ क्रीड़ा कुछ कौतुक ।

अग्निमित्र [हंसी] रहो...रहो...अरे...[हंसी]

धारिणी [हंसकर] गुदगुदी लगती है अभी...आर्यपुत्र सचमुच तब किशोर है ।

अग्निमित्र और तुम क्या हो मैं देखू अब... [हंसी]

धारिणी [हंसती है] मैं...तो...किशोरी हूँ...किसकी

अग्निमित्र मेरी...मेरी...वही जौ तब थी...सोलह वर्ष पहिले जब
आकाश का चन्द्रमा इसी धरती पर था ।

धारिणी और अब कहाँ है ?

अग्निमित्र थोड़ा और झुको । कितने दिन...महीने...वर्ष गये इन
लटों की गंध न मिली । तुम्हारी सांस मेरी सांस न बनी ॥

धारिणी अब...अ...ब...

अग्निमित्र देखो फलके मूँद कर नहीं...यह क्या...

धारिणी प्रेम की आँखें इन आँखों को बंद कर देती हैं ।

अग्निमित्र तो वे दूसरी आँखें हैं ?

धारिणी अब तक न जान पाये ?

अग्निमित्र नारी का रहस्य जो जान ही लिया जाय फिर पुरुष के
लिये विस्मय क्या रहेगा । किस में वह डूबे उतरायेगा...
जहाँ यह डूबना उतराना नहीं है...वहाँ जीवन का अर्थ
क्या है ?

धारिणी जैसे यह डूबना उतराना पुरुष के लिये...नारी के लिये
नहीं ।

अग्निमित्र मैं कहूँगा नहीं । माया में डूबा उतराया जाता है...
माया अपने डूबती उतराती ।

धारिणी भले भले यह तो बस...

अग्निमित्र क्या...कस क्या ?

धारिणी कभी कोई किशोर भी कहेगा...नारी को माया ।

अग्निमित्र वह नहीं जानता....इसी से डूब कर उतरा भी जाता
है । पर वे जो जानते हैं ऐसे डूबते हैं कि फिर वे उतरते
नहीं कितने ही...पीले पीले श्रमण जो डूबे फिर कहाँ
उतराये । हैं कहीं उनका पता ?

धारिणी अच्छा माया की आँखें देख रहे हो...

- अग्निमित्र** माया की नहीं प्रिये ! मोहिनी की आखें हैं ये जिनमें
अमृत का रस है । ठहरो...
- धारिणी** इतने ध्यान से क्या सुन रहे हो । इस लता कुंज में
सेनापति की विश्रामशिला के निकट कोई दूसरा नहीं
आयेगा...होगी कोई प्रतिहारी कहीं ।
- अग्निमित्र** उठो चलो...वसुमित्र आ गया । जयघोश से आकाश
हिल रहा है । मंगल गान और मंत्रों की ध्वनि...नहीं
सुन रही हो तुम ?
- धारिणी** (धीमी ध्वनि) नहीं...तो...
- अग्निमित्र** तुम कम सुन रही हो क्या ?...
- धारिणी** तुम्हारे निकट वह भूल गया है । तुम्हे विजयी पुत्र का
गर्व है पर मेरे गर्व इस प्रियंगु शिला पर तुम स्वयं हो ।
दोनों की कामनायें भिन्न हैं ।
- अग्निमित्र** सिंहद्वार पर...वसुमित्र हमें स्वागत में खड़ा न देखेगा...
उसे यह विजय कितनी फीकी लगेगी ?
- धारिणी** पर युद्ध में उसे भेजा किसने ।
- अग्निमित्र** तुमने । मैंने तो पूज्यपाद के प्रस्ताव का विरोध किया ।
मैं तो अपने ही यवनों के विरोध में जाने को तैयार था ।
- धारिणी** अपने जीतेजी पुत्र को रण में कौन भेजता है और वह
पुत्र जो अभी सोलह का भी नहीं हुआ । पर जब
आर्य सेनापति इस बात पर तुल गये कि वे...वसुमित्र को
भेज कर इस देश के वीरों और विचारकों को दिखा देंगे
कि वे अपना सब से महंगा रत्न भी देश के लिये छोड़
सकते हैं..हथेली में प्राण ले कर मैंने उनकी बात रख ली ।
- अग्निमित्र** पुत्र के मोह में पिता की अवज्ञा कर रहा था...देवी ने
बचा लिया ।

- धारिणी उसके आने की सूचना कब मिली ?...देखो मेरी सांस कैसी चल रही है ?
- अग्निमित्र यह सांस कब नहीं चलती है इसी तरह । यह अमोघ अस्त्र कब और कहां चूकता है ! इसी सांस की भंवर में पुरुष...
- धारिणी घुटने टेक कर दया की भीख मांगता है...अच्छी बात न कहो । (ऊंची सांस)
- अग्निमित्र तुम्हारा क्रोध भी सुन्दर लगता है ! टेढ़ी भंवेँ कामदेव का धनुष बन गई हैं ।
- धारिणी कहो भी ...तंग कर रहे हो...
- अग्निमित्र एक बार और वैसे ही देख दो...जो विष चढ़ गया है कम से कम उतर तो जाय ।
- धारिणी अच्छी बात...तब इस विष का उपचार महर्षि पतंजलि करेंगे ।
- अग्निमित्र (हंसकर) और तुम नहीं । ग़े, यह कैसा कोलाहल है ?
- धारिणी अब मैं भी सुन रही हूँ । विदिशा का जयघोष वायु के पंख पर चढ़ कर दिगंत हिला रहा है ।
- अग्निमित्र विदिशा आज विजय में फूली नहीं समाती । इस देश के इतिहास में विदिशा का यह दिन कभी न भूलेगा । दत्तमित्र के सैनिकों ने कितनी अबलाओं, कुमारियों और कुलबधुओं को कलंकित किया । अंतःपुर और शुद्धान्त विदेशियों के अनाचार से हिल उठे ।
- धारिणी और तब आर्य सेनापति ने सेमर की रुई की तरह साकेत के पूर्व यवनों को उड़ाया ।
- अग्निमित्र अब चलेँ कहीं उसका रथ आ जाय और हम यहीं रहें तब क्या होगा ?
- धारिणी सिंहद्वार के ऊपर से विदिशा की देवियों के साथ में

फूल और लावा बरसाऊंगी तुम नीचे से स्वागत करना
...पर नहीं ... अपने शरीर से पैदा पुत्र का स्वागत
क्या उसका शिर सूँघ कर आशीर्वाद देना, देव !

परिवर्तन

- अग्निमित्र** कोलाहल सिंहद्वार के समीप ही सुनाई पड़ रहा है ।
(नेपथ्य में कोलाहल । कई कंठों से निकली, कुमार
वसुमित्र की जय । शंख घंट की ध्वनि)
- कई कंठ** कुमार वसुमित्र की जय । यवनजयी कुमार वसुमित्र की
जय । महर्षि पतंजलि की जय । सेनापति पुण्यमित्र की
जय...जय...जय ।
- वसुमित्र** तब आपके पुन्य से यवन पराजित हुये । मातृ भूमि
आज स्वतन्त्र है । मुझे कहीं भी चोट नहीं लगी...आप
ऐसे क्यों अधीर हो रहे हैं ?
- अग्निमित्र** आओ वत्स ! तुम्हारा सिर सूँघ लूं । पिता की आज्ञा से
तुम्हें काल के मुख में डोंक दिया ।
- वसुमित्र** आपका यही धर्म था तात ! आप के इसी धर्म से यवन
पराजित हुये और फिर ... महर्षि पतंजलि की कल्याणी
छाया में काल की गति कहां ?
- अग्निमित्र** माता का आशीष लो वत्स ? देखो वह सोने की थाली में
आरती लिये खड़ी है । तब तक मैं आचार्य पतंजलि को
प्रणाम करूं ।
- वसुमित्र** (आगे बढ़ कर) मां...(शंख और तूर्य की ध्वनि)
- धारिणी** भारती कर लेने दो बेटा । फ़िस जन्म के पुण्य से तुम्हें
देख रही हूँ ?
- वसुमित्र** इस जन्म के पुण्य ही तुम्हारे बहुत हैं मां । तुम्हारे पुण्य
से ही महर्षि पतंजलि मेरे रक्षक रहे ।

धारिणी हाँ आओ...छाती से लग कर आँचल से तुम्हारा सिंह ढँक लूँ। हे भगवान। दासी का यह धन बना रहे।

अग्निमित्र (निकट आती ध्वनि में) देवी फूल और लावा से रथ भर गया। आचार्य पतंजलि तुम्हें आशीर्वाद दे रहे हैं। सखियों के साथ तुमने उन्हें भी फूल और लावा से तोप दिया।

धारिणी उनका योग हम स्त्रियां तो जानती नहीं। वे भी हँस कर ऊपर हाथ उठा कर आशीष दे रहे थे।

अग्निमित्र वत्स ! तक्षशिला के यवनराज अंतिमोक्त ने तुमसे दोक्षा ली।

वसुमित्र (हँसकर) हां तात ! पचास वर्ष से अधिक अवस्था के ...दो भाग बाल उजले। जैसे सिर पर गंगा यमुना का संगम हो। मुझे तो हंसी आ रही है (हँस कर) मेरी अवस्था के उनके दो पुत्र वहीं थे। आचार्य ने कहा...मैंने उनके काम में...माहेश्वर मंत्र फूंक दिया।

अग्निमित्र } (हँसकर) मंत्र फूंक दिया...

धारिणी }
वसुमित्र और नहीं तो क्या मां ! मुझे तो लाज लगती थी। मेरी अभी रेख भी नहीं आई और मैं बूढ़े यवनराज का गुरु बन गया। [हँसता है]

अग्निमित्र देवी ! आचार्य पतंजलि अतिथि गृह में हैं। तुम अपने हाथ उनके चरण धोकर उन्हें पादाशय दो। आज रात ही को हमें सपरिवार कुसुमपुर चलना है तात का यह आदेशपत्र है। वसुमित्र अब वहां पहुंच कर विश्राम करेगा। इस विजय के उपलक्ष्य में तात अश्वमेध यज्ञ करें।

धारिणी उसके विश्राम की चिन्ता श्रीमान् न करें। अपनी गोद में बिठाकर...आंचल से ढक कर मैं उसे सुला लूंगी। तब तक महर्षि के पैर धो लूँ।

अग्निमित्र कितना लम्बा आंचल है प्रिये !

धारिणी जितनी लम्बी यह धरती ...

परिवर्तन

[विदिशा के राज प्रासाद का सभा भवन व सामने सभा भवन के अंतिम छोर पर मंच, उस पर रत्नजटित सिंहासन जिसके ऊपर गरुडध्वज स्वर्णरत्न के दंड का लगा है। सिंहासन के नीचे विक्रममित्र बैठे हैं यवनराज दूत उनके सामने बैठा है। मंच के नीचे विदिशा का दंडधर मान्धाता खड़ा है जिसके एक हाथ में भल्ल और दूसरे में खुली शसि है।]

विक्रममित्र विदिशा तुम्हारा स्वागत करती है राजदूत। इसका मान्धाता तुम्हारे नाम का उच्चारण न कर सका... हेलियो...हेलियो हेलियो...करता रहा अंत में हार कर तुम्हारा नाम हलोदर कर दिया। इसे अपने नाम का देशी संस्कार समझो।

हलोदर हमने सब कुछ इस देश का स्वीकार किया तब फिर हमारा नाम विदेशी क्यों रहे ? ठीक है सेनापति ! मैं आज से हेलिमोडोरस नहीं हलोदर हूँ आप मुझे इसी नाम से पुकारा करें। विक्रममित्र इस देश के साथ आपने इसके धर्म को, इसके जीवन को स्वीकार किया। आपके पूर्वज इस देश के ऋण में बंध गये।

हलोदर इस धरती के अन्न जल से जीवन चल रहा है फिर इसके प्रेम में जब तक वे न बंधते तब तक तो वे केवल अत्या-

चारी होते इस भूमि में रहने का अधिकार उन्हें क्या होता ? यवन देश छोड़ने के साथ ही अपने बंधन हमने वहीं छोड़ दिये । जीयस और एथनी को वहीं छोड़ कर वे महेश्वर और पार्वती की शरण में आये ।

अग्निमित्र हां भद्र ! तक्षशिला और कापिशी के यवन राजाओं ने तो यही किया ।

हलोदर सेनापति ! शाकल से यवनों से भी जो अपराध इस पवित्र भूमि में हुये उसका कारण भी आप जानते हैं बौद्धनागसेन था । साकेत मध्यमिका और गोमठ पर उसी की प्रेरणा से यवन चढ़े थे । बृहद्रथ का देशद्रोह आप जानते हैं ।

विक्रममित्र हां धर्म के नाम पर विदेशी शक्ति को निमंत्रण... देश धर्म से बड़ा है ।

हलोदर यही तो सेनापति पुश्यमित्र ने सिद्ध किया ।

विक्रममित्र आसन ग्रहण करो भद्र !

हलोदर और आप नीचे बैठेंगे ।

विक्रममित्र पितामह वसुमित्र का यह सिंहासन है राजदूत ! यवनों को उड़ाते... सिन्धु पार कर के शाकल तक पहुंचे थे । प्रातःकाल से सूर्यास्त तक उनके धनुष से अग्नि बरसती रही । यवनों के साथ सेनापति खेत रहे । यवन सेना जब दुर्ग में भाग गई तब पुष्करावती के यवनराज...

हलोदर जी सम्राट अंतिग्रोक ने मध्यस्थ बन कर शाकल की रक्षा की । सेनापति वसुमित्र का पुष्करावती में स्वागत कर उन्होंने से शैव मंत्र की दीक्षा ली । तभी से हमारी मुद्रा पर नन्दी का चित्र है ।

विक्रममित्र यह सिंहासन और यह भवन उसी विजय के उपलक्ष्य में बना था सिंहासन की पूजा करनी है मुझे भद्र ।

मेघरुद्र उस छः दिन की सेना यात्रा को स्मरणीय करने के लिये कुमार सम्भव काव्य की रचना कर रहे हैं जिसमें कुमार कार्तिकेय तारकासुर का बध करेंगे । दानवों से देव भूमि की रक्षा होगी ।

हलोद्गर मेघरुद्र कौन है यह कोई दूसरा कवि...

विक्रममित्र (हंसकर) कालिदास नाम मैंने दिया । उनका नाम मेघरुद्र है ।

हलोद्गर सुना आपने उन्हें काशी पर आक्रमण के लिये भेजा है आकाश, पर्वत, लता, कुंज की ओर देख कर काव्य के मोहक भाव बांधना और कहां यह युद्ध...वह बेचारा युद्ध क्या करेगा ?

विक्रममित्र इस देश में लोक धर्म से मुक्त कोई नहीं है भद्र ! कवि को भी यहां लोक धर्म में रहना पड़ता है । वाल्मीकि, व्यास, पतंजलि सबको कर्म करना पड़ा । तुम्हारे देश के कवियों को लोकाधिकारण का अवसर नहीं मिला । आचार्य प्लेटो उन्हें स्वप्नद्रष्टा और मोहासन्न समझते थे ।

हलोद्गर (हंसकर) जी कवि बराबर सपने में रहते हैं । कब वे क्या कर बैठे कौन जानें अपनी कल्पना के लोक में उड़ कर कब इस लोक को छोड़ दें ।

विक्रममित्र पर हम कवि उसे मानने हैं जो प्रकृति और जीवन के सत्य का भार उठाता है...लोक रंजन और लोकतृप्ति जिसकी वाणी बिखेरती है...जो अपनी भूमि में उस तरह गड़ा है जैसे वह सामने पीपल का पेड़...जो भावनाओं में डूब नहीं मरता...यह देश कालिदास से अपना प्रेम कर्म, वैराग्य, राग और अनुराग ले रहा है जो इसने कभी वाल्मीकि और व्यास से लिया था ।

हलोदर यहाँ गरुड़स्तम्भ की स्थापना में पिछली बार जब मैं आया वे मेघदूत की रचना कर रहे थे किशोर कवि किसी महान् विस्मय में विभोर था...आखें खुलती थीं कभी बन्द होती थीं। मुंह पर कभी पीला कभी श्वेत और कभी लाल चंदन का जैसे लेप चढ़ जाता था। काव्य रचना भी इन्द्रजाल है सेनापति !

विक्रममित्र जो बालक भिक्षु बनाया गया....मुंडे केश...काषाय वस्त्र ...भिक्षा पात्र ले कर विदिशा के उस द्वार जो भीख मांगता रहा...

हलोदर (विस्मय में) ऐं सेनापति ! वह देव दुर्लभ रूप जिसे देख कर आंखें नहीं अघातीं...जिसे बराबर वैसा ही बने रहने की मैं कामना करता था उन सुकुमार हाथों में लोहे का भिक्षा पात्र ?

विक्रममित्र (हँस कर) तब तुम नहीं जानते श्रमणों ने उसे भिक्षु बनाया था।

हलोदर वही ... तो एकदम सम्मोहित करने वाली वे आंखें... समझे था वे आपके पुत्र...यह जान कर कि आप बाल ब्रह्मचारी हैं उसे मैं आपके वंश का...तो वे आपके वंश के भी नहीं हैं ?

विक्रममित्र विस्मय में न पड़ो भद्र ! कालिदास के साथ मेरे रक्तका सम्बन्ध नहीं है।

हलोदर पर उन दिनों जब आप उनके लम्बे वेश अपने हाथ से हिलाया करते थे आपकी आंखों में वही मोह छा जाता था जो पिता की आंखों में पुत्र को देख कर छा जाता है।

विक्रममित्र पुत्र का आकर्षण मैं नहीं जानता अपने कुल की गति से विवश हो कर जब मैं नारी का आकर्षण नहीं जान सका ... फिर भी ... पुत्र का अभाव ... प्रकृति के सब से बड़े

संतोष का अभाव तो मुझ में था ही उन दिनों कोई भी बालक पुत्र की तरफ मुझे अपनी ओर खींचता था...

हलोदर हिमालय हिल उठेगा सेनापति ! आपकी इस गहरी साँस से । तब यह कवि आपको कहाँ मिला ?

विक्रममित्र इसी विदिशा में दिन भर भीख मांग कर ... उन पहाड़ियों में जो विहार है ... सन्ध्या समय वह चला जाता था । सांझ हो रही थी । नदी के तीर केवट ने कहा तीन खेवा नाव आई गईं...वहीं खड़ खड़ा आंखों में आकाश भर रहा है ... जन्म लेते ही मांग मुड़ा कर सब भिक्षु बन जाते हैं । सभी निरवान ले लेंगे तो इस धरती पर कौन रहेगा...वह स्वप्न में पड़ा रहा और नाव खुल गई ।

हलोदर मेरी तो साँस रुक रही है ।

विक्रममित्र उसके ललाट पर चिन्तन की रेखा देखो...कोई वाल्मीकि या पतंजलि का बाल रूप ... मंत्र मुग्ध में खिंच गया उसके निकट सिरपर हाथ धरना था कि वह चौक कर लड़खड़ाया...संभाल लिया मैंने । भिक्षापात्र जो उसके हाथ से छूटा गेंद सा लुढ़क कर नदी के जल में समा गया ।

हलोदर इतना कष्ट आपने इस परिचित बालक के लिये उठाया ।
विक्रममित्र संभव है किसी जन्म का परिचय रहा हो ! मेरी गोद में वह वर्षों सोता रहा ।

हलोदर तब आपने इस भिक्षु को कवि बनाया ।

विक्रममित्र वह जड़ था उस पर सम्मोहन का जो प्रयोग किया गया था उसमें उसकी चेतना भर गई थी ।

हलोदर ऐं...

विक्रममित्र पूरे वर्ष भर के बाद उसकी बोली खुली थी ।

हलोदर और अब उससे आपको पूरा संतोष है ।

विक्रममित्र पूरा संतोष । मेघदूत और कुमार सम्भव के जो आठ सर्ग पूरे हो रहे हैं उनमें तपस्या और परस्पर विरोधी नहीं एक दूसरे के पूरक हैं । केवल तप जीवन की अस्वीकृति है और केवल भोग जीवन का उपहास...एक में रुचि का अभाव है दूसरे में संयम का ।

हलोदर अपने स्नेह के इस केन्द्र को आपने युद्ध में भेज दिया और फिर इतने संयत है...समुद्र से धीरे जैसे कुछ हुआ ही नहीं ।

विक्रममित्र काव्य के अलंकार नहीं मनुष्य की बोली बोलो कालिदास कवि पीछे है पुरुष पहले है । अवसर पड़ने पर हम अपनी सबसे प्रिय वस्तु उत्सर्ग करते हैं । सेनापति पुण्यमित्र ने यवनों के विरुद्ध पितामह वसुमित्र को भेजा था । वे अभी सोलह के नहीं थे । एक बूढ़ रक्त भी नहीं बहा उसने शील से काशिराज और उनके श्रमणमंत्रियों को बश में कर लिया ।

हलोदर विस्मय है सेनापति ! काशिराज की कन्या भी तो यहीं है ।

विक्रममित्र हां वे कालिदास के साथ आ रहे हैं । उनसे पूछूंगा उस कन्या के लिये क्या कहते हैं । अब इस मान्धाता के साथ अतिथि गृह में चलो ।

हलोदर आपके निकट भूख प्यास मिट जाती है सेनापति ! अवंती के समाचार क्या हैं । विदिशा ने शाकल के यवनों से इस देश को बचाया था और अब विदिशा ही अवंती का उद्धार भी कर रही है विदेशी चित्रियों से ।

विक्रममित्र कालिदास के लौट आने पर काशिराज की कन्या वासन्ती की समस्या है...अवंती के मार्ग में विदिशा आकर की सेना चल चुकी है शक तीन बार हारे । यह चौथा

अंतिम युद्ध होगा । जिसके लिये देश के सैनिक चारों दिशाओं से जुट रहे हैं ।

हलोदर थेर नागसेन की तरह यह जैन कालक भी अवंती का काल बना ।

विक्रममित्र ठीक वही बात । वैदिक व्यवस्था मिटाने के लिये इसी देश के श्रमणों ने दत्तमित्र को बुलाया । जैन बालक ने भी वैदिक विधान के विरोध में शक क्षत्रप की शरण ली इन असभ्यों ने अवंती को जला कर भस्म कर दिया है भद्र ! मान्धाता राजदूत को ले कर जाओ और वहां प्रमदवन में अपने मोर के साथ वास्मती है उसे भेजना तो...

हलोदर प्रणाम है सेनापति और हां...यह गरुडध्वज इसी सिंहासन के अग्र भाग में लगाने के लिये यवन राज अंतिलिक ने तक्षशिला के शिल्पीमणिभद्र से बनवा कर भेजा है ।

विक्रममित्र अनुग्रह है उनका । अपने निर्माण में ही मनुष्य अमर है राजदूत ! रत्नों का यह एक हाथ लम्बा गरुडध्वज जिस पर आंखें टिकती नहीं । क्यों आ रही है ! तुम इनके साथ जाओ ।

[दोनों का प्रस्थान]

वासन्ती (प्रवेश कर) क्या आज्ञा है सेनापति !

विक्रममित्र तुम भी मुझे सेनापति कह रही हो ?

वासन्ती मैं ही नहीं यह सारा अन्तर्वेद । इसके सभी नर नारी... शाकल और तक्षशिला के यवन मध्यमिका के शिवि, अवन्ती के मालव, सतलज के यौधेय, मथुरा के राजन्य, तृगर्त कुलिन्द वृष्णि, आदि सभी वैदिक गण पर राष्ट्र

जिन्हें आपके पूर्वजों ने अन्तर्वेदिकी चौकसी के लिये खड़ा किया। दक्षिण के सात वाहन कलिंग की गर्दमिल्ल जहाँ तक यह पृथ्वी पहुँचती है, आप सब कहीं सेनापति हैं।

विक्रममित्र राजनीति की भाषा में मेरी बेटी पटु हो गई है।

वासन्ती मैं जिस पिता की कन्या हूँ... उसकी योग्यता खुल गई है सेमरकी रूई सी तार-तार हो कर ऐसी उड़ गई कि किसी भी संयत पुरुष के लिये मुझे बेटी कहना अब घोर कलंक और अपवाद की बात होगी।

विक्रममित्र धीरज धरो उत्तेजना में विचार काम नहीं आता।

वासन्ती उत्तेजना मेरे भीतर है और विचार आप बाहर से दे रहे हैं। पिता का रक्त शरीर में है यह सत्य आप से भी न मिटेगा। जिससे आप जीवन भर घृणा करते रहे। जिसकी कन्या का आपने अपहरण किया, जिसके विरुद्ध आपने सेना भेजी।

विक्रममित्र राजकुमारी मैं तुम्हारे पिता का आदर करता हूँ।

वासन्ती क्या? सच कह रहे हैं आप? मेरा अपहरण तब किस लिये? अपमान और घृणा की बात इससे बड़ी क्या होगी।

विक्रममित्र उनके सम्मान के लिये तुम्हारी रक्षा की बेटी मैंने। देश के गौरव... जातीय मर्यादा की रक्षामें... वे तुम्हें जातीय मर्यादा के विरुद्ध मेनन्द्र के पुत्र को दे रहे थे जो उस समय पचास का था और जो वह बीस का भी होता तब हमारे गौरव के लिये तो... यह घोर अपमान की बात होती कि हमारी कन्या उद्धत यवन की भार्या बने।

वासन्ती पचास वर्ष का था...

विक्रममित्र तुमने उसे देखा नहीं मैं जानता हूँ। तुम्हारे पिता ने? उसके सामने कभी तुम्हें आने नहीं दिया। वे जानते थे

मैं इस, उनके आचरण का विरोध करूंगा। इसलिये जिस यवन को वे तुम्हारा पति बनाना चाहते थे उसके सामने तुम्हें जाने नहीं दिया। जिस दिन उसके साथ तुम विदा की गई... एक पहर पहिले वह घोड़े पर निकला और तब तुम रथ पर भेजी गई सब ओर से कपड़े से घेर कर।

वासन्ती (विस्मय में) यह सब आप कैसे जान गये ?

विक्रममित्र (हँसकर) आने दो अपने पिता को, सब वहीं खुलेगा... जान लेंगे वे भी मैं आतताई नहीं हूँ... उनके सम्मान में मैं अपना और अपने इस देश का सम्मान मानता हूँ। बौद्ध होने का अर्थ यह नहीं है कि जातीय गौरव विदेशियों के चरणों पर गिरा दिया जाय। इस देश के वीर और विचारक खड़े देखते रहें और हमारी राज्यलक्ष्मी के केश विदेशी कतर लें।

वासन्ती आपने उन्हें समझाया क्यों नहीं।

विक्रममित्र शाकल के मेनन्द्र और तुम्हारे पिता दोनों की दिक्षा गुरु क्षपणक नागसेन था, जिसने उखड़ते हुये बौद्ध विधान को फिरसे जमाना चाहा। वैदिक विधान से ही बौद्ध पद्धति भी चली.. तथागत हमारे ही भीतर पैदा हुये पर बाद को उनके अनुयायी विदेशियों को बुला कर इस पुण्य भूमि को पद दलित करते रहे।

वासन्ती तब आचार्य मुझे कलंकिनी नहीं समझते।

विक्रममित्र कैसी कलंकिनी रे ! काशी में ही तेरा रथ वस्त्रों से घेरा गया था। रास्ते के तीन दिनों में वह बराबर उसके पीछे रहा जिसमें किसी को संदेह न हो तीसरी संध्या को वह आगा और तुम यहां लाई गई। तेरे बारे में कलंक की

कल्पना भी अधर्म है । जिस किसी को यह संदेह होगा उसकी जीभ में काट लूंगा ।

वासन्ती (गहरी सांस ले कर) तब मैं जीवित रहूंगी ।

विक्रममित्र मैं यह भी जान गया था...तू जीना नहीं चाहती आत्म-हत्या का पाप तेरे मन में बैठ गया है, इसीलिये तेरे हर आचरण पर पहरा था । प्रासाद के उद्यान में भी तुम स्वतन्त्र नहीं थी वहां भी मान्धाता तुझे देख रहा था ।

वासन्ती नदी के तीर भी मुझ पर दो पहरी नियुक्त थे ।

विक्रममित्र मेरी रक्षा में आत्म हत्या शत्रु के लिये भी सम्भव नहीं है बेटी...फिर तू तो अपनी कन्या है । इस अवन्ती के युद्ध की मुझे जितनी चिंता है उससे कहीं अधिक मुझे तेरी है ।

वासन्ती फिर भी किसे विश्वास होगा कि मैं कलंकिनी नहीं हूँ...

विक्रममित्र गंगा की पवित्रता में कोई विश्वास करने नहीं जाता... वहां पहुंच जाने पर विश्वास अपने ही आजाता है । तुम्हारे निकट जो आयेगा उसके भीतर विश्वास वैसे ही आयेगा जैसे गंगा के निकट पहुंचने पर आता है । आज ही राजकुमार और कितने ही वीर यहां आयेंगे, जिसे चाहो चुन लो देख लो वह गर्व से तुम्हारा वरण करता है या नहीं !

वासन्ती और...मुझे वरण कर लेने पर मेरे इतिहास का वरण वह करेगा यह नहीं जिसमें मेरे साथ उस यवनकुमार का संबन्ध है ऐसा जड़ होगा वह...मेरे प्रति उसके मन में शंका न होगी किसी भी ऐसे पुरुष की कामना अब मुझे नहीं है । कितने नीचे गिरूंगी अब मैं । शरीर का वरण कोई कर भी ले...पर मेरे मन का मेरे विश्वास का वरण करने वाला वह महापुरुष कहां है जो आग से खेलने चलेगा । (भारी स्वर)

विक्रममित्र नहीं...नहीं रोओ मत...कुछ न कहो अब तुम देखोगी मेरी नीति में तुम्हारा मंगल होगा...कौन है मान्धाता !

मान्धाता काशिराज और...

विक्रममित्र (उद्वेग में) कालिदास...मान्धाता कालिदास ।

मान्धाता वह भी हैं स्वस्थ और सकुशल उनसे राजदूत हलोदर लिपटे खड़े हैं ।

विक्रममित्र तुम्हारे पिता के सम्मान में...मेरा वहीं जाना उचित है बेटी (प्रस्थान की ध्वनि)

वासन्ती (धीमे स्वर में) कवि के लिये सेनापति हिल उठे...उनका प्राण कवि की देह में है...ऐ...यह देव मूर्ति...कौन है, उद्यान में...रत्नजटित सिरस्त्राण...छाती पर जगमग कवच...हाथ में धनुष...कवि !

कालिदास (प्रवेश कर) आचार्य कहां है राजकुमारी । मैं अभी चरण न छू सका ।

वासन्ती अतिथिशाला में गये हैं । अभी न जाओ ।

कालिदास क्या बात है राजकुमारी ! आचार्य के चरण छू कर अभी आ रहा हूं ।

वासन्ती (भरे कंठ से) रुको कवि ! बस दो शब्द...दो...दो...

कालिदास (विस्मय में) अरे ! राजकुमारी । आप ऐसी...

वासन्ती यहां आओ कवि ! आज मैं कुमार कार्तिकेय का अभिनन्दन करूंगी । उनका वाहन यह मोर भी नहीं है ।

कालिदास (विस्मय में) समझ नहीं पाता ...मैं

वासन्ती इस विजयी वेश का अभिनन्दन कवि ! सामग्री तो कुछ है नहीं...फिर भी वीणा पर यूथिका की एक माला...
(आग्रह का स्वर) हिलोगे तो नहीं यहां से...

कालिदास हूं...तो यह मोर मेरा वाहन बनेगा ।

वासन्ती देव सेनापति कुमार कार्तिकेय का वाहन मोर है न कवि
तुम्हारी विजय के अभिनन्दन में...ऐसी विजय कभी
नहीं सुनी गई ।

कालिदास (हँसकर) मेरी विजय...शस्त्र में ने उठाया कहाँ !
आपके पिता शील और दया के अवतार है ?

वासन्ती (मन्द स्वर) कवि...

कालिदास राजकुमारी...

वासन्ती यह उपकार मैं जीवन भर...

कालिदास उपकार नहीं सेवा...सेवक उपकार क्या करेगा ।

वासन्ती पिता की मृत्यु अब सुनती हूँ...तब सुनती हूँ...पिछले
पाँच दिन...किसी भी रात पलक नहीं गिरी...और वे
यहां जीवित आ गये । ऐसा सेवक...नहीं कवि स्वामी...

कालिदास आचार्य के चरण अभी नहीं मिले, इसे आप अभी वीणा
पर ही रहने दें ।

विक्रममित्र (प्रवेश कर) यहीं हूँ वत्स ! मैं...मेरे चरण भी यहीं
हैं । मेरे लिये तुम यहां भागे आये...तुम्हारे लिये मैं
वहां भागा गया । यह माता तुम्हें इस सिंहासन के
सामने...गरुडध्वज की छाया में मिली है...तुम्हें धारण
करनी पड़ेगी । वासन्ती...

वासन्ती जी...

विक्रममित्र तुम्हारे पिता यहीं आ रहे हैं तुम्हें ले कर काशी जायेंगे ।

वासन्ती (भय में) आचार्य ! मैं आपके पास रहूँगी । वे मेरे
प्रार्थना मान लेंगे ।

विक्रममित्र वे तो कालिदास को भी मांग रहे हैं...उनकी कोई भी
इच्छा मैं पूरी करूँगा ।

कालिदास इन चरणों से छूट कर...इतने बड़े संसार में मेरे लिये
कोई दूसरा भी स्थान होगा यह न होमा, आचार्य । आप

से छूट कर...इस जीवन में...सरस्वती की साधना से
छूट जाऊंगा मैं ।

विक्रमित्र पर मैं तो स्वीकार कर चुका वत्स !

चासन्ती उनसे मैं तुम्हें मुक्त करूंगी कवि । आचार्य के चरण न
में छोड़ूंगी न तुम...

परिवर्तन

[विदिशा का राज प्रासाद विक्रमादित्य और कालिदास
सामने से प्रासाद की ओर देख रहे हैं]

विक्रमादित्य यही विदिशा है कवि डेढ़ सौ वर्ष तक...जहां से इस
देश की राजनीति और लोक नीति चलती रही ।

कालिदास राजन् ? कहा था मैंने...तीर्थ के भाव से इस विदिशा
को मैं देखता हूं सेनापति पुण्यमित्र और वसुमित्र
जिसकी धूल में लोटे थे आचार्य विक्रममित्र ने जहाँ
जन्म लिया !

विक्रमादित्य वसुमित्रने यवनों को हराकर देश की रक्षा की थी ।
आचार्य अमिमित्र की साधना से अचन्ती में शक हारे
आचार्य हमें छोड़ कर चले गये कवि !

कालिदास चौरासी वर्ष जो भार चलता रहा वह अब अधिक न
चलता देख । अचन्ती के उद्धार में उन्हें मुक्ति मिल
गई । मुक्ति व्यक्ति की नहीं सामज की होती है । अकेला
व्यक्ति जब मुक्ति चाहता है...समाज की ओर से आंखें
मूंद कर...अपने निज के स्वार्थ में डूब मरता है ।

विक्रमादित्य आचार्य की सबसे बड़ी सफलता क्या थी कवि ? महा-
पुरुष के जीवन से प्रकाश की लहरें चलती हैं ।

कालिदास जैन कालक और नृशंस शक क्षत्रप को क्षमा करना ।
आपके स्वर्गीय पिता का प्राण जिन दोनों ने लिया...

अवन्ती का संहार जिन दोनों ने किया...उनको भी
आचार्य ने क्षमा किया ।

विक्रमादित्य और उस क्षमा का फल भी देखा बंधु ! अवन्ती के
संहारक उसके निर्माता भी बने । काल्क ने अपने जैन मठ
की अटूट सम्पत्ति दी और शक सेना से भी उसने शारी-
रिक श्रम लिया । अवन्ती के सामने आज अमरावती
फीकी है ।

कालिदास आचार्य ने चलते समय आप से क्या कहा था राजन् ।
विक्रम,दित्य राजा अपने धर्म का प्रदर्शन नहीं करता । राज्य के सभी
मत अपने रास्ते चलते रहें...वह सब की सहायता करे
प्रजा अभाव से ग्रस्त न हो, राजा का यही सबसे बड़ा
धर्म है । निर्वाण और मोक्ष पहले प्रजा का...तब राजा
का मेरा यही गुरुमंत्र है कवि ।

कालिदास और भी कुछ कहा था ।

विक्रमादित्य सुनोगे वह भी । वह कहने के लिये मुझे मन और वाणी
को एक लय में करना होगा । कालिदास मेरा है और वह
मैं तुम्हें दे रहा हूं । नीचे की धरती डोल उठी कवि !
और ऊपर आकाश में स्वर्ग का संगीत गूंज उठा । अरे !
तुमने मुंह क्यों फेर लिया ओ...हो...मुझसे छिपाकर...
पोंछ दूं तुम्हारे आसूं मैं । मेरे प्राणों में तुम्हारा निवास
है कवि ! आचार्य की यह धरोहर मैं मन और प्राण में
रखता हूं सुनो भी ... वह देखो वह कवि पत्नी वासन्ती
आ रही है कहीं देख न ले फिर उनका उपचार कौन
करेगा ?

वासन्ती (प्रवेश कर) राजन् ! आपके कवि किसी भाव लोक में
रम गये हैं । यहां आ कर मेरी स्मृति के द्वार खुल गये हैं ।
एक से एक मोहक चित्र ... देख रही हूं । विदिशा के

कणकण में काव्य है, संगीत है ... कर्तव्य और बलिदान है। प्रासाद में सिंहासन के पास खड़ी हुई ... आंखों में आचार्य की दिव्य मूर्ति मूल उठी और कानों में उनके शब्द गूंजने लगे।

कालिदास विजयीकुमार वसुमित्र के सिंहासन के निकट गई थी प्रिये !

वासन्ती हां...जहां नित्य बैठ कर तुम कुमार सम्भव सुनाते थे आचार्य को ... जिस स्वर लहरी में मैं डूब जाती थी... जहां नित्य मेरा नया जन्म होता था।

विक्रमादित्य राजकुमारी ... उसी सिंहासन की छाया में ... कवि के कण्ठ में वह माला पड़ी थी ...

वासन्ती हां वहीं इन्होंने शंकर की तरह विष पान किया था... नहीं तो मेरी आज क्या गति होती राजन् ... मैं अब राजकुमारी नहीं हूँ।

कालिदास विषपान ... कवि का काम है कुमारी ! शंकर भी विषपान के समय कवि बन गये थे।

विक्रमादित्य ऐं तो अभी वे कुमारी है ... पूरे बारह वर्ष पति के सहकार में रह कर ... (हँसी)

कालिदास कवि की पत्नी बराबर कुमारी रहती है ... नहीं तो फिर वह कवि न रहे ... कल्पना कुमारी है ... सरस्वती भी कुमारी है ... कवि व्यक्ति नहीं होता ... उसकी पत्नी कुमारी बनी रहती है।

विक्रमादित्य (हँस कर) तब कहो कि तुम यह काव्य रच रहे हो।

कालिदास यह विदिशा अमर काव्य है राजन ! मेरे कंठ से तो यही वाणी फूटी थी। इस धरती में...इस आकाश में...इस बेतवा के बनों और वृक्षों में कविता की मोहिनी नाचती है।

वासन्ती कवि को पंख लग रहे हैं राजन ! देखिये कहीं उड़ न जाये ।

कालिदास उन पंखों को तुमने बांध जो दिया...कहा था कभी इन महींबाहु से...कुमारी कल्पना और कुमारी वासन्ती दोनों के साथ कैसे निभेगी । कभी एक मान करेगी कभी दूसरी...

विक्रमादित्य आचार्य विक्रममित्र ने तुम्हारा कौमार्य भंग किया था याद है

कालिदास चुप भी रहें । ...

विक्रमादित्य काशिराज ने जब इनका हाथ तुम्हें धराया ... आचार्य आनन्द से गद्गद् हो उठे थे ।

कालिदास हम विदिशा का ऋण कैसे भरेंगे राजन् ?

वासन्ती ऐं...कवि भी कभी कोई ऋण मानता है (हंसी)

कालिदास (गम्भीर स्वर में) कैसा रहे...

विक्रमादित्य क्या...

कालिदास एक नाटक लिखू... जिसमें सेनापति पुण्यमित्र...अग्नि-मित्र और वसुमित्र के चरित्र...प्रकृति और देश के बंधन में खिल उठे । आचार्य विक्रममित्र का ऋण तो मैं चुका नहीं सकता । पिता का ऋण किस पुत्र ने कब चुकाया है ? कवि ऋण नहीं मानता कुमारी...उसे चुकाता जाता है ऋण के अंक वह नहीं लिखता, जितना लेता है उससे अधिक दे देता है ।

वासन्ती देख रहे हैं राजन् किस लोक के भाव विस्मय इनकी आंखों में खेल रहे हैं ...?

कालिदास यह कर्म भूमि है जिसने दो दो बार विदेशियों को परा-जित कर देश के गौरव की रक्षा की ।

वासन्ती मैं सहारा दे कर खड़ी हो जाऊं ।

कालिदास अपना भार जब मुझसे न चल सका तभी तो तुम्हारा सहारा लिया था ।

विक्रमादित्य तब तो कवि से प्रबल हैं कवि पत्नी...

कालिदास जी कोई भी स्त्री अपने पुरुष से प्रबल होती है...

वासन्ती यहां कविता के नये भाव मिल रहे हैं क्या ?

कालिदास हां प्रिये ! भूमि कवियों और कलाकारों की तीर्थ है, वीरों और विचारकों की तीर्थ है । विदिशा ... विदिशा यह सामने यवन दूत हलोदर का बनाया गरुडध्वज है राजन् ! चलें यह स्तम्भ कुछ बोलता है । भागवत हलोदर की निष्ठा का यह दृढ़ स्तम्भ आंखों को ज्योति और कंठ को वाणी देगा ।

विक्रमादित्य हां चलो ।

कालिदास चलूं फिर आओ तुम वहां । आचार्य ने जो मुझे आधार दिया ।

वासन्ती बना रहेगा वह आधार कवि ! जब तक तुम्हारी वाणी रहेगी ।

४

भविष्य का गर्व

पात्र और पृष्ठभूमि

—O—

वासन्ती	प्रधान नायिका
गंगादेवी	वासन्ती की माता
काली	वान्सती की सखी
जयन्त	वासन्ती का प्रेमी
शंकर	कला का प्रेमी

[ईसा के पूर्व, भारतीय उपनिवेश सुवर्णद्वीप में भारतीय कन्या वासन्ती और भारतीय युवक जयन्त की प्रेम कहानी । देश की राजनीति के परिवर्तन का प्रभाव जो उदनिवेशों में पड़ा, कल्पना की आखों देखा उसीका चित्र ।]

[सामने और दाहिनी ओर धूमता हुआ समुद्री किनारा । बाईं ओर यों तो समुद्र का लगाव दिखाई दे रहा है, किन्तु समुद्र के किनारे तक जंगल फैलता चला आया है, इस लिए उधर का समुद्र और धरती भी आड़ में चली गई है । जंगल का सिलसिला लगातार किसी ओर कुछ सीध में और कुछ इधर-उधर सरकता सा बढ़ता जा रहा है । समुद्र की मद्धिम सफ़ेद लहरें हलकी-हलकी आगे सरकती हुई किनारे से लगकर, कुछ लय सी पैदा कर रही हैं । संध्या होने में अभी प्रायः दो घड़ी की देरी है । कभी-कभी चिड़ियों की चहक और बोली, नहीं तो सब ओर जैसे सुनसान । जिधर जंगल समुद्र के किनारे आ लगा है पेड़ों के झुरमुट से कोई युवती निकल कर, किनारे-किनारे सीधे पूर्व की ओर आगे बढ़ रही है । पश्चिम क्षितिज से कुछ दो लट्टे ऊपर सूर्य की किरणें, उस की पीठ और पीछे की ओर खुली लट पर पड़ कर उस का पिछला भाग कुछ लाल-पीला कर रहीं हैं । घुटनों तक खुरखुरा रेशमी परिधान और उसी तरह के रेशमी चीघर से कस कर बांधा छाती का भाग जिस की गांठ पीठ पर है । गोरा रंग, पतला ललाट, लंबी नुकीली आंखें, आकृति पर गहरी चिंता की रेखाएं उस की सारी स्थिति जैसे कुछ विशेष आकर्षक और मोहक बन रही हैं]

(नेपथ्य में) दीदी...दी...दी...वासंती दीदी...

[युवती पीछे की ओर घूमकर देखती है। सूर्य की किरणें सीधे उस के मुँह पर पड़ती हैं, जिस से उस की आंखें मुँदी...मुँदी सी हो रही हैं। उसी की हमजोली काली तीसी के फूल जैसी रंगवाली कन्या, गले में नारियल के पत्तों की डलिया लटकाए दौड़ती हुई आती है। कमर और छाती का बहुत थोड़ा भाग रेशमी चीवर से बँधा है। बाल बांध कर सिर पर जूड़े का रूप दे दिया है। उस के पास आकर कहने लगती है।]

काली भूठ बोल गई दीदी...में भूठ...

वासंती क्या मतलब ? कहाँ भूठ बोल गई...किस से...क्यों ? बोलती क्यों नहीं ?...कोई न कोई बात रोज गढ़ती है। (उस की ओर एकटक देखती हुई) काली...

काली एक ही सांस में दुनिया उड़ाने लगती हो तुम। पहले यह तो देखो ! उस दिन किनारे से पांच ले आई थी और आज यह इतना...(गले की डलिया देती है। रेतीली मूमि पर एक ही साथ मटर से मोती छितरा जाते हैं) अभी पानी के भीतर से निकाले आ रही हूँ। [चीवर के दोनों छोर जाघों के बीच में हाथ से दबाती है—पानी की धार गिरने लगती है]

वासंती अकेले समुद्र में फँस पड़ी ? डरी नहीं ?

काली वह भी था...

वासंती कौन ... ?

काली (मुस्कराती हुई सिर हिलाती है) तुम...

वासंती अब समझी...वह भी था इधर क्यों नहीं आया...?

काली कहता है उसे डर लगता है। तुम्हारी ओर देखने में... कैसे देखती हो ... मैं तो तुम से नहीं डरती। और वह

बेचारा तुम से भागा भागा फिरता है । (धरती पर मोतियों की ओर संकेत कर) कहो तो इतना रोज निकाल दूँ...

वासंती (अनिच्छा के स्वर में) उहं क्या होगा ?

काली लेकिन उस दिन तो तुम ने कहा कि तुम्हारे देश में लोग इस के लिए बहुत तरसते हैं । इसे भी लोग भाग्य की बात मानते हैं ।

वासंती हां, संसार में जितने देश हैं...जितने लोग हैं...उतने भाग्य भी हैं । भाग्य के विचार में भी लोग एकसे नहीं देखते ।

काली आज हो क्या रही हो बहन...?

वासंती क्या है...?

काली तुम्हारा स्वर भारी हो रहा है, आंखें जैसे चू पड़ना चाहती हैं, आज तुम्हें कोई दुःख है । आज इतने मोती तुम्हारे पैरों के नीचे हैं और तुम उन की ओर देखती भी नहीं ।

वासंती इन से मेरा कोई भी काम नहीं (दूर पर समुद्र की ओर आंखें लगा कर) लेकिन हां, एक बात हो सकेगी, तुम अपने मित्र से कहो रेशम का तीन लर का मोटा डोरा भांज दें, मैं तुम्हारे लिए इन की माला बना दूँगी ।

काली जैसे फूल की बनाती हो ?

वासंती हां...

काली इन में छेद कहां हैं ? छेद करने में तो सब फूट जायेंगी ।

वासंती इस की चिंता न करो...सब छेद दूँगी मैं । ऊपर से यह सब साबित होंगी पर भीतर से इन का हृदय आर पार

रहेगा ? (नीचे का ओंठ दांत से दबा कर) आर-पार ।
(मुस्करा कर) अपने साथी से कहो न, मुखिया से दिन
ठीक कर ले ?

काली किस लिए ?

वासंती विवाह के लिए...तुम्हारे और 'शंबर' के विवाह के
लिए...या इसी तरह तुम दोनों खेलते रहोगे, दोनों में,
जंगल में, पेड़ की इस डाल से उस डाल पर और कुछ
दिन ऊख और धान के खेत में...

काली यही सब कह कर तो उसे लजा देती हो बहन...कहते
कहते हार गई (दाईं ओर हाथ उठा कर) छूट भागा ।
हां हमारी जाति को तुम्हारे देश में क्या कहते हैं लोग
और तुम लोग जो अब यहां हो, तुम लोग भी तो...

वासंती हम लोग तुम्हें मूल निवासी कहते हैं । सुवर्णद्वीप के
मूल निवासी ।

काली जैसे आदमी का नाम धरा जाय तुम लोगों ने धरती का
भी नाम धर दिया ।

वासंती यह सब रहा, उससे कह दो दिन ठीक करा ले तब तक
में इनकी माला बना लूं, तुम्हारे जूड़े और तुम्हारे गले
के लिए...

काली (जैसे उलझ कर) लेकिन मुखिया क्या करेगा ? तुम्हारी
तरह हमारे भीतर पोथी पत्रा तो चलता नहीं ? दो साल
बीत गए, एक भी विवाह हमारे यहां नहीं हो पाया ?

वासंती क्या बात है ?

काली दो साल बीत गए...किसी भी दिन आधी रात को
कोयल नहीं बोली । आधी रात को जब कोयल बोल
देगी दूसरे ही दिन हमारी जाति में सब विवाह हो
जाएंगे ।

वासंती - (विस्मय से) और यदि न बोले कोयल आधी रात को ?
 काली (ऊपर हाथ उठा कर) बूढ़े लोग कहते हैं... उन लोगों
 के बहुत पहले ... बारह साल तक कोयल नहीं बोली
 और तेरहवें साल सब विवाह हुए थे ।

वासंती और एक ही दिन में...
 काली (हँसकर) एक दिन में तो सारी जाति का फिर से विवाह
 हो सकता है । नहीं जानती... अच्छा मैंने पिछली बार
 देखा था । होता यह है कि मुखिया सब कुमारों को एक
 ही पाँत में बैठा देता है, लड़कियाँ दूसरी पाँत में सौ
 चाँस की दूरी पर खड़ी की जाती हैं । पुरुषों के पात पर
 भोजन परस दिया जाता है, लड़कियों के हाथ में डंठल
 के साथ एक एक कमल का फूल रहता है और जब
 मुखिया शंख बजाता है, पुरुष भोजन करने लगते हैं
 और लड़कियाँ दौड़ने लगती हैं । जो लड़की जिस पुरुष
 के गले में फूल डाल कर उसी के पात पर खाने लगती है
 वह उस की स्त्री बन जाती है । यही है तुम्हारे इन मूल
 निवासियों का विवाह ।

वासंती है तो बड़ा विचित्र...
 काली कैसे यहां यही होता है
 वासंती तब शंबर के गले में यदि कोई दूसरी फूल डाल कर
 खाने बैठ जाय...

काली यह कैसे होगा... कौन दौड़ेगी मुझसे आगे ?
 वासंती और तुम टुकुर टुकुर ताकती रहो... न पहुँच पाओ ।
 काली मुझे भी किसी के साथ बैठ जाना होगा ।
 वासंती और तुम न बैठो तो...
 काली (भय के स्वर में) ऐसा कभी नहीं हुआ है । मुझे बैठना
 ही पड़ेगा । इसी लिए तो मैं उस के साथ दिन भर

- दौड़ती रहती हूँ, पेड़ पर चढ़ती हूँ, पानी में तैरती हूँ ।
इस समय कोई दूसरी मेरे बराबर दौड़ न सकेगी ।
- वासंती तब तो मैं इन मोतियों को छेद दूँगी आर-पार...
काली नहीं, मां जी सुन्न से मींग रही थीं, मंदिर के पुजारी को देने के लिए...
- वासंती (उत्सुक होकर) कौन मां जी...
काली तुम्हारी...दोपहर से तुम्हें खोज रही हैं...जिस से मिलती हैं रो रोकर तुम्हारी बात कहती हैं । कहती हैं तुम्हारा नाम लेकर वह समुद्र में डूब गई...जंगल में भटक गई...मेरी माँ—तो मेरे लिए नहीं रोती, चाहे मैं कहीं रहूँ ।
- वासंती (कड़े स्वर में) तुम ने कुछ कहा ?
काली झूठ बोल गई झूठ, मैं ... मैं नहीं जानती—मैंने नहीं देखा ।
- वासंती उन्हें रोते देख कर...भी...
काली हां, हां...उन्हें रोने के लिए मैं ने तो नहीं कहा...तुम्हारे लिए रो भी रही थी और (गले पर हाथ रख कर) डलिया में हाथ डाल कर एक मूँठी मोती भी निकाल लिए । कहने लगी...वह जो नया विष्णु मंदिर बना है ...उस के पुजारी को देने के लिए (पश्चिम ओर हाथ उठा कर) वह देखो आ भी रही हैं । यहां से भी उठ लेंगी ।
- [धरती पर बैठ कर बिखरे मोती बटोरने लगती है]
- वासंती काली, चली जा यहां से तू...
काली यह लेती जाऊं...
वासंती (खीझ कर) छोड़ दे, चली जा...
काली बस अब उठा लेती हूँ...

वासंती (लात से मोती छितरा कर) इसी तरह...इसी तरह रहने दो एक भी नहीं जायेंगे...उन के हाथ में से भी मैं गिरवा दूँगी ।

काली (पूर्व की ओर देखती हुई) आ गई ।
[भागती हुई निकल जाती है । वासंती कुछ इस मुद्रा में कि जैसे मां के आने का पता नहीं । किनारे जाकर बैठ जाती है । अधेड़, गोरी, मांसल स्त्री का प्रवेश, जिस की आँखें लाल हो रही हैं, सिर के अधिक बाल उजले हो चले हैं साँस फूल रही है, आगे बढ़ कर वासंती के ठीक आगे खड़ी होती हुई ।]

स्त्री दोपहर से दौड़ते दौड़ते चूर हो गई । यहां क्या कर रही हो ?

वासन्ती (गंभीर मुद्रा में उसकी ओर देखती हुई) दायें हाथ में यह सब क्या ले रक्खा है मां... ।

स्त्री (दायें हाथ की ओर देखते हुए) देवता के लिए बेटी...

वासन्ती फेंक दो... फेंक दो मां ... (रेत पर बिखरे मोतियों की ओर संकेत कर) अभी नहीं फेंक रही हो ?

स्त्री कहा तो तुम से देवता के लिए ... मुझे इसका क्या मोह है ?

वासन्ती हाय ! हाय ! अभी भी तुम्हें देवता की चिंता बनी है ? देवता की चिंता में तुमने अपनी चिंता नहीं की ? पाषाण की मूर्ति पर मोती रख कर तुम कौन सा सुख उठा लोगी ? और अगर मूर्ति भी मोती चाहती हो तो फेंक दो उसे इस समुद्र में, यहां मोतियों की कमी नहीं है । (सम्हलती हुई) कुछ नहीं, जब तक तुम फेंक नहीं देती, एक शब्द भी तुम से न बोलूँगी ।

स्त्री (कातर दृष्टि से उसकी और देखती हुई, रेत पर मोती फेंक देती है) अब तो मेरी बात मानोगी न ?

वासन्ती जानती हूं ... सब जानती हूं मां ... तुम मुझ से क्या कहना चाहती हो तुम्हारे मन में क्या है ? यह सब बहुत कुछ कह सुन कर क्या होगा ? जो तुमसे छूट गया...मुझसे पकड़ा नहीं जा सकेगा। देश के जो लोग यहां बस गए हैं, जो कभी भारत से धर्म और संस्कृति की पताका लेकर चले थे और जो नए भी आते हैं बस जाते हैं यहां, या लौट जाते हैं, तुम्हारा सब कुछ जानते हैं। उन सब से तुम मुझे मुक्त न कर सकोगी।

स्त्री तुम तो महाभारत में देख चुकी हो दुष्यन्त शकुन्तला की वार्ता ? और इतना तो मानोगी जयन्त तुम्हें...

वासन्ती नहीं...नहीं...आगे न कहना कुछ...भारत का साहित्य अभी उसी पुराने ढर्रे पर चल रहा है, लेकिन जीवन तो वह मिट गया ! वहां जीवन में जो नए सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक बन्धन पनप रहे हैं, साहित्य में भी अपना काम करेंगे। पुण्यमित्र ने भारत में केवल बौद्ध सत्ता मिटा कर ही दम नहीं लिया। ब्राह्मण सत्ता के लिए अब वह ब्राह्मण-साहित्य ... ब्राह्मण विचारधारा भी फैला रहा है। सुना है जाति-विधान वहां और भी जटिल किये जा रहे हैं—ब्राह्मण कुल अब केवल ब्राह्मण-कुमारी से विवाह करेगा। पुण्यमित्र ने यहां के भारतीय उपनिवेश की वृत्ति बन्द कर दी, जानती हो क्यों ?

स्त्री मुझे तो नहीं मालूम (चिंतित हो उठती है)

वासन्ती इस तरह चिंतित क्यों हो रही हो। जीवन अपना रास्ता निकाल लेता है। हम लोग बौद्ध जाति के हैं। इस तरह विवश कर पुण्यमित्र हमें पहले वैष्णव बनायेगा और

बाद में चार जातियों में उसके प्रचारक हमें बाँट देंगे ।
लेकिन मैं दूसरा ही सोच रही हूँ...

स्त्री क्या है बेटी, मुझे भी जान लेने में ...

वासन्ती मैं अपने चमड़े को रंग कर काला कर लूँगी और इन्हीं
मूल निवासियों में मिल जाऊँगी या ... (अपनी बाँह
पर हाथ फेरने लगती है)

स्त्री (दुःख के स्वर में) क्या कहती हो जयंत को छोड़
कर...

वासन्ती चुप भी रहो । उन के नाम की माला फेरने से अब कुछ
न होगा । तीन वर्ष पहले तुम ने उन्हें जो कुछ देखा
था (कुछ सोचने लगती है)...

स्त्री मुझे विश्वास है बेटी, जयंत तुम्हें अपनी रानी बनाएगा,
उस ने मुझ से कहा था...अपने उत्तरीय से तुम्हारा
मुँह ढँक कर वह रो पड़ा था जब तक नाव आड़ में न
हुई खंब की रस्सी पकड़े वह किनारे पर तुम्हारी ओर
देखता रहा । तुम भूल रही हो...नहीं...तो...

वासन्ती (रोकती हुई) भूल नहीं रही हूँ...हमारी जाति यह सब
नहीं भूल पाती । इन बातों का भूलना यदि संभव
होता तब तो यह भी कह सकूँगी कि मेरी ही अवस्था
की जब मेरी मा गंगादेवी थीं एक दम प्रकृति बदल देने
के लिए वे भिच्छुणी न हुई होतीं और तब मैं कहीं सिंधु
गंगा, नर्मदा, ब्रह्मपुत्र या स्वर्णरेखा के किनारे होती,
जहां दूसरा किनारा भी दिखाई देता । जहां मैं अपनी
सीमा के भीतर रहती । (समुद्र की ओर हाथ उठा कर)
यहां एक दम इतना असीम होना पड़ रहा है । असीम
सब के लिए नहीं होता मैं...

- गंगादेवी भूल हुई बेटी...मैं मानती हूँ मुझ से भूल हुई...
लेकिन अब...
- वासंती कोई बात नहीं...उस के लिए तुम्हें दोष नहीं देती ।
सब कुछ जान कर समझ कर भी जो तुम पाषाण प्रतिभा
के सहारे पार जाना चाहती हो ... यहां भी तुम भूल
रही हो । तथागत की विधि से निकल कर जो तुम अब
वैष्णवी हो रही हो ...
- गंगादेवी केवल तुम्हारे लिए...मैं चाहती हूँ जो मुझसे छूट
गया...
- वासंती वह मैं पकड़ लूँ । भिक्षुणी की कन्या किसी भी पुरुष
का घर भर सकेगी ? ठीक अर्थ में पत्नी और माता होगी ।
है तुम्हें आशा...?
- गंगादेवी जयंत इन बातों का विचार नहीं करेगा । तुम आज भी
इसी वेश में हो । आज तो तुम्हें नए वस्त्र पहन कर उस
ओर घाट पर रहना चाहिए था । विष्णु मंदिर के द्वार से
घाट तक तोरण और बंदनावर लगे हैं लाल पताकाएं
गाड़ कर बीथी की तरह मार्ग निकाल दिया गया है ।
- वासंती उन का स्वागत इस द्वीप के भारतीय और मूल निवासी
हृदय खोल कर कर रहे हैं । उन के यहां आजाने से
वैष्णव धर्म और ब्राह्मण विधान फूले फलेगा इस में कौतू-
हल और विस्मय की बातें होगी...यह सब जानती हूँ...
लेकिन मैं ... मैं इतना ही कह सकती हूँ कि मैं इस में
कोई योग नहीं दे सकती ।
- गंगादेवी लेकिन उतरने के पहले जब वे नाव से चारों ओर देखेंगे
और तुम्हें न देख पाएंगे...तुम्हारे लिए वस्त्र भी उन्होंने
पहले ही भेज दिए ।
- वासंती च...च...! माँ होकर तुम मुझे शिला से क्यों दबा रही

हो । सब से पहले तुम्हारे शरीर से पैदा हुई, मैं तुम्हारी बेटी हूँ, उस के बाद दुनिया के लिए मैं हो सकूँ या नहीं । इस बात को तुम क्यों भूल रही हो ? तुम्हारी बेटी का अपमान भी.....

गंगादेवी
वासंती

तुम्हारा अपमान...?

हां, कंचुकी, उत्तरीय और परिधान जो उन्होंने ने भेज दिया इस के मूल में ही मेरा अपमान है । उन्होंने ने दयावश मेरी परिस्थिति पर तरस खाकर मेरे लिए वस्त्र भेजा । जिस कुमारी को वह किसी दिन अपना हृदय दे चुके थे, नारियल के डाभ का रस मुझे घूंट घूंट पिला कर जो स्वयं पीते थे और जिस डाभ पर मेरे ओठ पहले पड़ते थे, उस में जिन्हें मिठास कम हो जाती थी ... चली जाओ तुम माँ, यहां से, मुझे चकर आ रहा है ।

[हाथों में मुँह छिपा कर वहीं रेत पर सिर रख देती है ।]

गंगादेवी

तो क्या मैं सब कहीं ठगी गई...लेकिन इस का प्रमाण क्या है कि वे तुम से प्रेम नहीं करते ?

वासंती

(संयत होकर समुद्र की ओर हाथ उठाकर) इस समुद्र में तीन वर्ष पहले जो जल था वह तो सूख गया...यह सारा का सारा जल नया है ।

गंगादेवी

मैंने तो इसे सूखते कभी नहीं देखा ।

वासंती

(गिराशा की मुद्रा में मुस्करा कर) तुम ने नहीं देखा मां और देखा तो किसी ने नहीं । नित्य यह जितना सूखता रहा है उतना नया जल इस में बराबर आता रहा है और इन तीन वर्षों में इस का पुराना जल सब सूख चुका है जो जल तुम देख रही हो वह सब नया है । जंयत का पुराना सब सूख चुका है...तुम जो देखोगी

सब नया होगा । इस में उन्हें दोष देना तो इस समुद्र को दोष देना होगा । किसी दिन की अपनी प्रेयसी को वे अभी नग्न न देख सकेंगे...इसी लिए उन्होंने ने ऐसे वस्त्र भेजे, जिस में मैं सब...सब ओर से छिप जाऊँ । लेकिन नहीं इस तरह सत्य छिपा कर क्या होगा । मुझे देखने की उन्हें चिंता भी अब न होगी और यदि कहीं केवल कौतूहलवश, अपनी प्रभुता के मद में वे आ भी गये मेरे पास तो मुझे इसी तरह देखेंगे । (दोनों बाहें फैला कर) इसी तरह, और मेरी इस दशा का आघात उन पर होगा (मुस्करा कर जिस में जैसे उस का मर्म हिल जाता है) यदि यह इतना भी नहीं हो सका तब तो मैं मरी हूँ ...मरी..

गंगादेवी

और यदि कहीं तुम्हें लिवा जाने के लिए...

वासंती

(छूट कर हँसती हुई) छोड़ दो यह सब सपना माँ... जीवन का मर्म न देख कर लोग सपना देखते हैं ।

गंगादेवी

तो क्या यह मान लूँ कि वह तुम से अब...प्रेम... नहीं...

वासंती

सब कुछ क्यों कह देना चाहती हो...और फिर तुम तो सब कुछ जानती भी नहीं । इधर देखो मेरी ओर (एकटक उस की आँखों में देखती हुई) मैं...सब...कुछ...जान चुकी हूँ और इधर कई दिन से जो मैं दिन दिन भर इस ओर जंगल और समुद्र की ओर रहती हूँ...केवल उसी तैयारी के लिए कि यदि कहीं वे मेरे सामने आ भी जाँय तो कम से कम मैं खड़ी तो रह सकूँ । (दोनों हाथ से चक्र बनाती हुई) अपनी शक्तियों का व्यूह बना रही हूँ । एक बार सघ कर उन की आँखों में देखूँगी ।

[उस का स्वर भारी हो उठता है ।]

गंगादेवी अरे ! (आगे बढ़ कर उस की आंखों पर हाथ रख कर) रोओ मत । ना ... ना ... (दोनों हाथों में उसका सिर पकड़ कर बैठ जाती है । वासंती सिसकती रहती है, जिस में उस के पीछे का भाग नीचे ऊपर हो रहा है ।) तुम ने आज भोजन भी नहीं किया ।

वासंती (दो डग बढ़ कर खड़ी होती हुई) आज ही नहीं... जिस दिन वस्त्र आण थे...तुम इतना ही जानती हो कि मैं संघ भोजनालय में जाती थी, लेकिन मैं ने क्या खाया यह तो तुम जानती नहीं । पुजारी ने वस्त्र देते समय मुझे उन का पत्र भी दिखाया था; जिस में उन्होंने ने पुजारी को लिखा था—यह वस्त्र भिक्षुणी गंगादेवी की कन्या वासन्ती को दे दिये जाएँ । पिछली बार श्रीविष्णु मंदिर के निर्माण के समय जो मैं अपने पिता के साथ वहां गया था मैं उस कन्या के साथ समुद्र किनारे जंगलों में कभी कभी भ्रमण किया करता था । उस समय भी लोटती समय मैं ने उसे कुछ अपने वस्त्र दिये थे और अब जब मैं तीन वर्ष के बाद फिर आ रहा हूं, उस की कुछ इस तरह की इच्छा स्वाभाविक होगी । देख रही हो कैसी साफ झूट निकलने की बात है ?

गंगादेवी देख रही हूं बेटी, लेकिन कोई न कोई रास्ता तो हमें निकालना ही होगा ।

वासंती अभी और सुन लो तब रास्ता निकालो...चाहती तो नहीं थी कि मैं वह सब कह दूं, लेकिन बिना कहे अब मेरा बोझ बढ़ता जा रहा है । लेकिन देखो कहीं कुछ असावधानी न कर बैठना.....

गंगादेवी अब क्या असावधानी मैं कर सकूंगी ।

वासंती असावधानी कुछ लोगों के साथ ही पैदा होती है ? और

मृत्यु के समय चिता पर भी साथ ही साथ जाती है।
तीन वर्ष पहले का किशोर जयंत जो अपनी हँसी से
आकाश रंगता चलता था, उस की आंखें जिधर घूम
पड़ती थीं...जैसे कमल के फूल बरसने लगते थे, पुष्प-
मित्र का प्रधान सेनापति है। ब्रम्हपुत्र से लेकर सिंधु
तक उनके जनपद उस के शस्त्रों से त्रस्त हो उठे हैं।
दूर से बच कर उन्हें आशीर्वाद देना मां, निकट जाने की
चाह न करना।

गंगादेवी और तुम नहीं चलोगी ?

वासन्ती हूँ, तो अभी कुछ और कहना पड़ेगा। पुजारी ने पल
भर में मुझे वस्त्र दे दिये होते...लेकिन उसकी आंखों के
लिए तो जैसे मुझे छोड़ कर और संसार मिट चुका था।
उस तीन महोत्सव के यहां के प्रवास में मैं उनके साथ
कहां कहां रही, समुद्र के किसी किनारे पर जंगल के
किसी कोने में...कहां संध्या हुई कहां रात हो गई, ऐसी
बानें जिनका उत्तर किसी भी स्त्री के पास कभी रहता
नहीं, वह खोद-खोद कर मुझसे पूछ रहा था और देख
लिया उसके लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं, तब कुछ
व्यंग की मुस्कराहट में उसने कहा, जयन्त अपनी तीसरी
पत्नी के साथ आ रहे हैं और शायद चौथी यहां करेंगे।
उसका यह संकेत सीधा मुझ पर था।

गंगादेवी तो उसने तीन विवाह कर लिए...ऐं...तब उसके वस्त्र
तुमने फेंक क्यों नहीं दिए ? उसे नहीं देखूंगी मैं...
उसे देखने के पहले मैं समुद्र में डूब मरूंगी ?

वासन्ती नहीं मां...कभी कभी हमें विषपान करना पड़ता है।
कम से कम एक बार विषपायी भी होने में ही मनुष्य

मनुष्यता का ऋण चुकाता है। यदि मैं ने वस्त्र फेंक ही दिए होते तब तो उस पुजारी का संदेह सत्य हो उठता। चुपचाप वह विष पीकर मैं चली आई और मुझे तो अभी और भी विष पीना होगा।

[काली का प्रवेश]

काली चलोगी बहन ! नाव दिखाई पड़ रही है। उसके ऊपर गरुड़ की पीली पताका फहरा रही है। चलो देव आएँ। [गंगादेवी विकल होकर इधर उधर देखती हैं जैसे वे कुछ स्थिर नहीं कर पाती।]

वासन्ती जाओ मां ! तुम अवश्य जाओ ... लो अभी तुम खड़ी हो ? तुम्हें जाना है किसी आशा, किसी याचना के लिए नहीं...केवल उन्हें मन से क्षमा कर देने के लिए और अगर उनकी ओर से तुम्हारा मन धुल नहीं जायगा तो मुझे बड़ा दुःख होगा। इतना समझ लेना...

[गंगादेवी का अनिच्छा पूर्वक प्रस्थान। काली भी जाना चाहती है वासन्ती उसे मंत्र से बुलाती है, उसके पास आने पर उसका कंधा पकड़ कर हिलाने लगती है।]

काली कहो भी...मुझे देर हो जायगी ... मैं कुछ भी न देख सकूंगी।

वासन्ती धन पगली, मुझे यहां अकेली छोड़ देगी।

[मान की मुद्रा बनाती है।]

काली अभी आ जाऊंगी...देर न होगी ... मुझे यह देखने को कहां मिलेगा...लोग बड़े बड़े शंख लेकर, सोने के थाल में फूल और लावा लेकर और भी क्या क्या मैं तो सब जानती भी नहीं, किनारे पर जा रहे हैं। मैं दौड़ती हुई चली आऊंगी...और तुम क्यों नहीं चलती ? चलो तुम

भी... (जंगल की ओर संकेत कर) वह देखो। वह भी झांक रहा है। बिना मुझे साथ लिए तो वह जायगा नहीं।

वासन्ती (उधर देख कर) है तो तुम्हारा शंबर। उसे बुलाओ तो यहां...

काली मेरे बुलाने पर यहां नहीं आयगा। चलो चलें, तुम भी देख लो...

वासन्ती (जैसे कोई पीड़ा दबा रही हो) तुम नहीं जानती काली! मेरे पत्रा में आज मेरे लिए डूब मरना लिखा है, और तुम भी मुझे छोड़ कर जा रही हो? अच्छा जाओ।

काली नहीं तब तो मैं नहीं जाऊँगी। (हाथ हिला कर शंबर को बुलाती है, वह कुछ चल कर फिर खड़ा हो जाता है) बुलाओ, जब तक तुम नहीं बुलाओगी वह नहीं आएगा।

[वासन्ती हाथ हिला कर बुलाती है। शंबर निकट आता है लेकिन उस की आँखें सीधे धरती पर हैं।]

वासन्ती शंबर मेरा एक काम करोगे? (शंबर उस की ओर देखता है।) बोलते क्यों नहीं?

शंबर क्या है?

वासन्ती मुझे दो डाम नारियल ला दोगे? उस की ढेंपी काटने के लिए अपनी बांकी भी लेते आना...

काली हां, जी, ले आओ। हम लोग वहां नहीं जाएंगे, नहीं तो दीदी समुद्र में डूब जाएंगी।

शंबर (समुद्र की ओर देख कर) मैं निकाल नहीं दूँगा? मेरे रहते डूब जाएंगी?

[दोनों हाथ से अपना कंधा मरोड़ने लगता है।]

वासंती (हंस कर) इस समय तुम्हें समुद्र में नहीं कूदना है समझे, अभी तो तुम्हें नारियल ले आना है। (शंबर का प्रस्थान) अरे यह तो दौड़ता हुआ जा रहा है, हरिण भी इतना क्या दौड़ेगा ?

काली बस वहीं तो नारियल लगे हैं, उसे आते कितनी देर लगेगी ?

[बाईं ओर जंगल के उस पार एक ही साथ कई शंख बजने लगते हैं, बीचबीच में वेदमंत्र की ध्वनी भी सुनाई पड़ती है। कोलाहल बढ़ने लगता है।]

वासंती हूँ...

काली (जैसे नाचती हुई) आगए...आगए...यहां तुम हो...मैं हूँ...शंबर भी है...हम तीन इधर हैं और सब उधर हैं। कोई शंख होता तो हम लोग यहीं बजाते... यहीं बजाते।

वासंती किस लिए री...

काली वह उधर बजाते हैं, हम इधर बजाते...

वासंती अच्छा तो शंख बजा कर हम भी उन की बराबरी करते ?

काली हां तब क्या...तब क्या ? वह भी जानते कि हम भी शंख बजा रहे हैं।

वासंती काली ! (कुछ सोचने लगनी है।)

काली लो अब...कहती क्यों नहीं...उधर क्या देख रही हो... उधर कुछ नहीं है कुछ नहीं है...समुद्र का देव इधर नहीं अता उस ओर...‘उस ओर’ जहां लोग शंख बजाते हैं.. उधर लोग समुद्र के देव से डरते हैं। वह उसी ओर रहता है। (वासंती दूर समुद्र की ओर देख रही है कभी कभी उस की आंखें बंद भी हो जाती हैं। काली उस के पास बैठ कर उस की बांह पकड़ लेती है) तुम

डर रही हो। वह दो को एक साथ नहीं पकड़ता...मैं तुम्हें छोड़ूंगी नहीं...वह तुम्हें ले कैसे जायगा।

वासंती शंबर के साथ तुम्हारा विवाह हो जायगा। तुम दोनों एक घर में रहने लगोगे, तब मुझे भी वहीं रहने दोगी।

काली (जैसे कुछ न समझ कर) और मां.. जी...

वासंती मैं तुम्हारे साथ रहना चाहूँ...तुम्हारी जाति में मिल कर...

काली ऐं...तुम लोग तो देवताओं के देश से आए हो...जहां मनुष्य के रूप में देवता धूमते हैं। नए मंदिर का पुजारी तो यही कहता है। तुम्हारी छाया जिस पर पड़ जाती है वह पवित्र हो जाता है।

वासंती जिस का शरीर जितना अधिक गोरा होता है वह उतना ही बड़ा देवता होता है। मैं पहले अपनी देह काली कर उस देवता को भगा दूँगी।

काली देह काली कर लोगी ?

वासंती यह देखो (बाएं हाथ पर उँगली रखती है जहां अंगूठे के नह भर त्वचा काली हो गई है) मैं इसे कई दिन से बराबर धो रही हूँ यह छूटता नहीं।

काली (अपने हाथ के पास उस का हाथ खींच कर ध्यान से देखती हुई) यह तो ठीक मेरे हाथ के रंग में मिल जाता है। तो तुम सारी देह ऐसी ही कर लोगी। ना दीदी ...कभी नहीं.....मैं तुम्हें उस तरह देख न सकूँगी न देख सकूँगी। (हरे दो नारियल लिए शंबर का प्रवेश। वासंती के पास दोनों नारियल और अपनी तेज बाँकी रख देता है) सुनते हो...दीदी हम लोगों के साथ रहने को कह रही हैं।

शंवर (प्रसन्न हो कर) ठीक तो है। इन के रहते तुम मुझ से झगड़ा तो करोगी नहीं। इसी लिए दीदी हम लोगों के साथ रहेंगी। लेकिन अभी तो जब कोयल बोलेगी।

वासंती जब कोयल बोलेगी...तब तक...कौन जाने इस बार भी बारह वर्ष न बोले।

शंवर जानती हो दीदी कौन आया है आज...इतने झंडे पताके इतने शंख, फूल अक्षत, क्या...क्या...। मैं तो उसे पहचान गया। वही जब वह नया मंदिर बना रहा था... तुम्हारे साथ जो घूमते घूमते कभी कभी हमारी बस्ती की ओर चला जाता था। लेकिन अब तो उस की ओर देखा नहीं जाता...चमाचम सोने की तरह कपड़े चमक रहे हैं। सिर पर सोने का मुकुट है, जिस में गोल-गोल, कोई लाल, पीला, नीला, उजला (उँगलीसे परिधि बना कर) ऐसी चमक जैसे बिजली खेल रही हो। कंधे में धनुष, लंबा जितना वह है, पीठ पर तरकस और... और सब तो मैं जानता भी नहीं।

वासंती और कैसे कैसे लोग साथ हैं उनके शंवर ...

शंवर अच्छा हुआ दीदी तुम नहीं गई.... (काली को संकेत कर) यह भी नहीं गई। धक्का धुक्का, इधर...उधर... कहीं कोई जा रहा है, कोई अपने बचाव के लिए पुकार रहा है... यह भी कोई बात है। एक साथ भेड़ की तरह लोग कूंग में गिरने लगे। जिन्होंने ने देख लिया उन्हें मिला था और जिन्होंने ने नहीं देखा उन का क्या चला गया! अरे हां दीदी उन के साथ तुम्हारी ही तरह एक...उस के वस्त्र भी उसी तरह चमक रहे हैं, उस का मुकुट भी उसी तरह चमक रहा है। वह सब तुम्हें मिल जाता...

वासंती लेकिन वह सब मिल जाने पर मैं तुम्हें पहचान नहीं पाती । काली को पहचान नहीं पाती । वह सब मिल जाने हर आँखें अंधी हो जाती हैं...कोई किसी को पहचान नहीं पाता ।

शंबर लेकिन बह तो नाव से उतरने के साथ हीं.....मां जी दूर कोने में खड़ी थीं.....पुजारी ने संकेत से दिखा दिया...सब को छोड़ कर...मंदिर में भीतर भी नहीं गया...बाहर से ही सिर झुका कर लौट पड़ा और मां जी को एक ओर अलग ले जाकर हँस हँस कर बात करने लगा । उस के साथ वाली तो जैसे उन्हें कब की जानती थी...वह तो जैसे हँसी की फुलझड़ी है ।

काली बहुत हँसती है वह, शंबर...

शंबर बहुत हँसती है...

वासंती इसी लिए ..वह इस प्रवास में साथ है ..जो हँसना जानता है, उस के लिए सब सुलभ है...सब प्राप्त है ।

शंबर (दूर पर हाथ से संकेत कर) काली ! भाग चल यहां से...वह देख, वह इधर ही आ रहा है अभी नहीं भागती ?

काली दीदी को छोड़ कर न जाऊंगी...तुम भले जाओ...

शंबर (उस की ओर घूर कर देखता हुआ) नहीं जायगी... क्या रहेगी यहां (धनुष खींचने की तरह हाथ घुमा कर) मार देगा बाण, टें बोल जायगी । अच्छी बात...

[प्रस्थान]

वासंती कोई डर नहीं है काली...तुम्हें मारेंगे नहीं । लेकिन तब तक के लिए तुम उधर कगार से नीचे उतर जाओ...

जहां तक हो सके मेरे निकट रहना । केवल वह तुम्हें देख न सकें ।

[काली चली जाती है ।]

काली (आगे जाती हुई) बोलना मत...बहन...बोलना मत चाहे कितना बुलाएं ।

वासंती अच्छा तब लौट आ...लौट...नहीं लौटोगी...आओ यहां काम है सुन भी लो ।

काली (पास आकर धीरे से) आ गए...जल्दी... करो...
वासंती चल वहां मोती बटोर ले...जाओ तुम्हारा कोई क्या करेगा?

[काली आगे बढ़ कर धरती पर बैठ कर एक एक मोती बटोरने लगती है । जयंत का प्रवेश । कविकल्पना के उदात्त नायक सा तेजस्वी शरीर । कंधे पर उसी तरह धनुष और पीठ पर तरकस ।]

जयंत (झुक कर कुछ मोती उठाते हुए...काली भय से लुढ़क पड़ती है । और फिर भाग जाती है) अच्छी जाति के मोती हैं...कितने बड़े बड़े और रंग भी क्या...

[वासंती की ओर देखता है]

वासंती जी...कुलीन हैं न...इसी लिए समुद्र से बाहर हो गए हैं...अपने दल से बाहर निकल कर...

जयंत अपने दल से बाहर निकल जाना कुलीन होना है, ऐं

[मुस्करा कर सिर हिलाने लगता है ।]

वासंती (धरती की ओर देखती हुई) पुण्यमित्र के इस युग में इस से बढ़ कर कोई दूसरा सत्य है ?

जयंत तब तो तुम सारी परिस्थिति समझ रही हो । मुझे तुम्हें समझाने में...(बात बदलते हुए) तो मुझे भेंट करने के लिए यहां कमलालय से मोती आया है ?

वासंती (समहालने की चेष्टा में) सभ्यत संस्कृति और धर्म की पताका लेकर आप यहां आए और अब धन लेकर यहां से जाएंगे? आप भी लोभी हैं? आप के भीतर भी विकार है... यहां वालों के लिए आप तब देवता न रह जाएंगे। जो छाया मात्र से आप की...मुक्त हो जाने का विश्वास कर रहे हैं। इन सीधे सादे जीवों के लिए मुक्ति कितनी बड़ी उलझन, कितना बड़ा अभिशाप हो रही है।

जयंत तो तुम इन की असभ्य दशा से ही संतुष्ट हो...

वासंती सभ्यता भीतर से आती है, बाहर से लाई नहीं जाती, और जिन के लिए सभ्यता रोग हो उठती है वही दूसरों को सभ्य भी करने चलते हैं। और जहां तक अपनी बात...मैं तो अब असभ्य हो जाना चाहूंगी।

[बाएं हाथ से अपनी आँखें बंद कर लेती है।]

जयंत (आगे बढ़ कर) यह तुम्हारे हाथ पर क्या हो गया... जल गया? (उस की उँगलियां पकड़ कर हाथ ऊपर खींचते हुए) लेकिन...यह तो...कोई लेप है।

वासंती बन और समुद्र की कुछ वस्तुएं मिला कर मैंने लेप बनाया है। उसी का प्रयोग है। कई दिन हुए यह धोने पर भी छूट नहीं रहा है। कुछ दिन और देख कर मैं अपना शरीर इसी से रंग दूंगी।

जयंत (आवेग में पीछे हटते हुए) लेकिन यह तुम किस लिए करोगी...मुझे मर्म तक बेध कर।

वासंती (बाहें फैला कर) और मैं इसी तरह रह जाऊं...इसी तरह तो तुम संसार जीत कर भी अपना मर्म न बचा सकोगे? तुम यहां दूसरों को मुक्त करने आए हो और आप ऐसे ही रहोगे?

जयंत तो तुम इस देव रंग को विकृत कर मुझे मुक्त करोगी ?
(भीतर का उद्वेग उस की आकृति पर झलक जाता है ?)

चासंती आह ! इस रंग के प्रति इतनी ममता ! और अब मेरे
लिए तुम ने इस रंग का मूल्य भी क्या छोड़ा है ?

[उसकी सांस बढ़ जाती है ।]

जयंत मेरी परिस्थिति जान कर भी...तुम...

चासंती जिसे साथ लेकर यहां आए हो...यही तुम्हारी तीसरी
पत्नी...गुर्जर कन्या है न ?

जयंत हूं...

चासंती इस के पूर्वज यवन थे । यूनान से आ कर यहां बस
गए । पुण्यमित्र के प्रचारकों, पुरोहितों ने उन्हें जातियों
में बांट दिया, और अब यह ब्राह्मण कुमारी की पहचान
से तुम्हें मिली ।

जयंत ठीक है लेकिन...

चासंती हां...जानती हूं...मेरी मां ब्राह्मण कुमारी थी, असावधानी
में भिक्षुणी हो गई और भिक्षुओं के दल में यहां आई ।
मैं यहां पैदा हुई...तुम्हारा ब्राह्मण विधान मुझे स्वीकार
नहीं कर सकता । तुम्हारा यह विवश होना मैं जानती
हूं...इसी लिए कुछ उस तरह की आशा मैंने पहले ही
छोड़ दी । तुम्हारे वस्त्र उसी तरह...खुले भी नहीं ।
मुझे चाहे और जो जो करना पड़े, केवल तुम्हारी दया
पर जीवित रहना मुझ से न हो सकेगा । हमारे भीतर...
किसी भी स्त्री की बनावट में तुम्हें यह बात न मिलेगी ।

जयंत (किसी गंभीर निश्चय में) तो फिर चलो तुम मेरे साथ...

चासंती कहां...

जयंत देश...

- वासंती तुम जानते हो मैं यहीं पैदा हुई थी...मेरे लिए अब इसे छोड़ कर कोई दूसरा देश है नहीं। (नारियल की ढेंपी काट कर) लोगो...इसे ?
- जयंत उस में तुम्हारे नाम का प्रभाव न हो...
- वासंती जिस में तुम्हारी जाति चली जाय ? नारियल के रस में ब्राह्मण की जाति डूब जाय क्यों (हँसने लगती है) और देखो वह भला आदमी केवल मुझे पैदा करने से ही नहीं रहा, उस ने मेरा नाम जो यह रख दिया, जिस से उस की प्रकृति की बनावट तार तार होकर उड़ने लगती है।
- जयंत तुम्हारी आकृति का रंग पल पल में बदल रहा है.... मुझे भय है तुम मुझ से कुछ छिपा रही हो।
- वासंती (तन कर खड़ी होती हुई नारियल समुद्र की ओर फेंक कर) और तुम मेरे जितने आवरण हैं एक एक कर सब खोल देना चाहते हो, एं ? लेकिन यह सब व्यर्थ है। देश के जो लोग यहां पहले आए बौद्ध थे। तुमने उनकी वृत्ति वंद कर दी। अब जो वैष्णव होगा वही तुम्हारी वृत्ति पा सकेगा। कुछ दिन के बाद तुम्हारे यहां कोई दूसरा संप्रदाय चलेगा और तब यहां लोगों से कहा जायगा वस्त्र की तरह फिर विश्वास बदलने के लिए। यह सब ऐसे क्या चलेगा ?
- जयंत इतने दूर भविष्य में तुम क्यों जा रही हो ?
- वासंती मैं देख रही हूँ कि किसी न किसी दिन जो लोग भारत से यहां आ गए हैं, भारत की वृत्ति से छूट जाएंगे। उन्हें इन्हीं मूल निवासीयों में मिल कर मिट जाना होगा। उन्हें तुम यहां से लौटा न ले जाओगे और यहां छोड़ देने पर मैं जो कह रही हूँ वही होगा।

जयंत कोई बात नहीं...इतना तो रहेगा कि भारत से इन जंगलों में समुद्र के इस पार सभ्यता आई थी ?

चासंती धर्म और संस्कृति की पताका गाड़ने वाले लोग जो आज यहां (मुस्करा कर) देवजन्मा कहे जा रहे हैं, किसी दिन इन में मिल कर इन्हीं की तरह, काले, असभ्य और अर्धनग्न रहेंगे। यह सब तुम्हारे भविष्य का गर्व होगा। लेकिन मुझे इसमें संतोष नहीं है।

जयंत (जैसे पिघल कर) तुम्हें संतुष्ट करने के लिए...केवल तुम्हारे संतोष के लिए मैं इस बार आया।

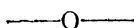
चासंती इतने आडंबर के साथ। मैं तुम्हारी बात भूठ क्यों करूं। लेकिन मैं तुम्हें अपने संतोष की बात बता रही हूं। प्रकृति जो काम मुझ में करती उसे मैं दिनों या घड़ियों में पूरा कर इन मूल निवासीयों में मिला जाऊंगी। बस इसी एक रूप में मैं अपनी रक्षा देख रही हूं। और अब तुम जाओ... (हाथ की काली जगह पर उगली रख कर) मेरा समाधान यह है।

[एक ओर निकल जाती है। जयंत एकटक समुद्र की ओर देखता रहता है। परदा गिरता है।]

५

दशाश्व मेध

पात्र और पृष्ठभूमि



वीरसेन	पद्मावती का नागराज, तरुण । जिसने कुषाणों से देश की स्वतन्त्रता का संकल्प किया ।
श्रंगारक	कुषाण राजा के पूर्वी छोर का शासक — तरुण ।
कनिष्क	कुषाण राजकुमार । वासुदेव का पुत्र । तरुण ।
वज्रसेन	वीरसेन का सहचर, तरुण ।
कौमुदी	कुषाण राजकुमारी । वासुदेव की पुत्री, किशोरी ।
मन्दिनी	कौमुदी की प्रतिहारी । यवन कन्या, किशोरी ।

[काशी के प्रसिद्ध दशाश्वमेध घाट पर जो नागों के अश्वमेध कुशाणों की हर पराजय पर होते रहे और जिनके कारण उस स्थान का नाम दशाश्वमेध पड़ गया उसकी पहली कहानी]

(देवपुत्र शाहि शाहानुशाही वासुदेव की सुन्दरी कन्या कौमुदी मथुरा के दुर्ग के भीतर प्रमदवन के प्रियंगु कुंज में वीणा बजा रही है। वीणा के स्वर आरोह की गति में चढ़े जा रहे हैं। यवनी नन्दिनी पारिजात की माला, जिसमें कितने दूसरे फूल लगे हैं लियं खड़ी है)।

कौमुदी
नन्दिनी

जूड़ा में लगा दो...

जूड़ा के लिये दूसरी बनेगी... यह तो बसकंठ में... स्तनांशुक पर फेल कर नीचे नाभी पर डोलेगी। देखिये इतनी लम्बी जूड़े में टिकेगी कैसे?

कौमुदी

कंठ में पहनने पर ... वीणा के दंड से दब कर मसल उठेगी नन्दिनी ! पारिजात के फूल दबाव नहीं सहते ... फिर ... पगली...

नन्दिनी

(हँस कर) वीणा के इस कठोर दंड का भाग्य पारिजात की सुकोमल माला को नहीं मिला ... वह चार मुख वाला बूढ़ा ...

कौमुदी
नन्दिनी

चुप नहीं रहेगी चली है विधाता में दोष देखने।

(धीमे स्वर में) किसी से पूछ लो कुमारी ! ... कहां तुम्हारे सुकुमार कोमल ... कदम्ब के फूल से ... और कहां यह कड़ी वीणा देखो तो यह ... यहां हां यहां यह चिन्ह पड़ गया है... इस कोर का... माला इनकी रक्षा तो करती।

कौमुदी कोमल को चाह होती है कठोर की और कठोर कोमल चाहता है यवन कन्या ! अपने हृदय और इस वीणा के बीच में कोई रोक नहीं चाहती ।

नन्दिनी (दबे स्वर में) इस चिन्ह को कोई देख ले क्या कहेगा सोचे तो ।

कौमुदी कहती चलो । चुप क्यों हो गई ... क्या सोचे कोई वीणा के इस चिन्ह को देख कर हूं ... हूं सुरू रहा है परिहास ।

नन्दिनी कोई नहीं मानेगा ... ऐसे सुरक्षित स्थान पर वीणा के कोर की लीक ऐसी बन जायगी, यहां का चिन्ह कोई दूसरी ही बात कहेगा । न माने तो किसी को दिखा लें क्या कहता है वह ... अन्तर्वेद के पूर्वी चित्रपट कुमार अंगारक को बुलाऊं...

कौमुदी इधर आना ... हां थोड़ा और झुको मुंह फेरो इधर... अभी नहीं मिल रहा है कान । अब मिला देखो मेरी ओर...

नन्दिनी दुख रहा है राजकुमारी छोड़ दीजिये हां हां किसी को न देखने दूंगी अब सी...सी ।

कौमुदी दुख रहा है ।

(कपोल पर चपत)

नन्दिनी आया...हाय उंगलियों की साट पड़ गई राजकुमारी ! देखिये यह चम्पे की कलियां...देखू आपकी उंगलियां दुख रही होंगी ।

कौमुदी अब जाओ अंगारक को दिखा आओ देख ले वह तुम्हारे कपोल कितने कोमल हैं...जिन पर मेरी उंगली की साट सारी रेखाओं को लिए उमड़ आती है ।

नन्दिनी ऐसा बहुत देखा होगा उन्होंने...पर हां यह चिन्ह कहीं देख पाते...

कौमुदी तब इसी देह को ले कर स्वर्ग के भीतर पहुंच जाते; पर इस देह के साथ कभी कोई वहां नहीं गया इसलिए यह लाभ उन्हें न मिलेगा ।

नन्दिनी राजकुमारी !

कौमुदी हां...कह...

नन्दिनी क्या वे सुन्दर नहीं हैं ?

कौमुदी हैं तो...

नन्दिनी और वीर...

कौमुदी वीर भी हैं ।

नन्दिनी तब उनमें कमी क्या है ?

कौमुदी किस बात के लिए...?

नन्दिनी जिसके लिए बराबर अपनी पलकों में आपको लिए रहते हैं छिप कर आप देखते नहीं अघाते । प्रासाद वितान पर सारी रात टहल कर काट देते हैं ... नींद नहीं आती उन्हें ...यही देखने के लिए तो...

कौमुदी वीणा का यह चिन्ह मेरे इस बायें...पर इससे उन्हें संतोष क्या होगा ? लालसा की आग में क्या वे और न जलेंगे । उनके भाग्य में यह नहीं है नन्दिनी ! मेरा जन्म उनके लिये नहीं हुआ है । (गहरी सांस)

नन्दिनी पर क्या आप नहीं जानती...

कौमुदी पहेलियां न बुझा...सीधे कह तू क्या जानती है ।

नन्दिनी कुमार अंगारक आपके प्रेम में हैं अब...मदनोत्सव के दिन उनकी आंखों के लिए इतने बड़े संसार में आपको

छोड़ कर कहीं और कुछ न था। आपने भी देखा तब से उनके हृदय पर क्या बीत रही है आप जानती भी हैं।
कौमुदी (क्रोध का स्वर) रोक दे मेरे जानने की बात... अपने जानने की बात कह बस अपने।

नन्दिनी तब आप रुठ हो रही है... यमुना के तीर पर जल बिहार की नाव में इस प्रमदवन के हर कुंज भवन में... रंगशाला में सब कहीं आपकी परछाईं बने रहते हैं वे...

कौमुदी (धीमे स्वर में) मुझे चाहिए वह पुरुष जिस की परछाईं में बनूं। जो पुरुष मेरी परछाईं बन गया... धैर्य और संयम का इतना अभाव है जिसमें... जिसे अब मैं जीत चुकी... वह मेरा पति न बनेगा। जो मुझे जीत लेगा जिसकी परछाईं में बन जाऊंगी उसके कंठ की माला मेरी बाहें बनेंगी और तब वह यह चिन्ह देखेगा दूसरा कोई नहीं। [गहरी सांस]

नन्दिनी पूछ रहे थे कुमारी पुरुषपुर कब जायंगी ?

कौमुदी पर मैं अब पुरुषपुर न जाऊंगी। वहां फूलों में न यह रंग है न गंध... नीलम की यमुना वहां नहीं है इस वायु मंडल में यमुना की हर लहर में मोहन की बंशी अभी भी बज रही है।

नन्दिनी (विस्मय में) राजकुमारी कह क्या रही हैं आप... मैं तो नहीं सुनती...

कौमुदी पर मैं सुनती हूं बंशी की उसी ध्वनि में मोह कर सो जाती हूं। सवेरे उसी की टेर में जागती हूं। जल विहार के समय लहरों से वही ध्वनि निकल कर हृदय में अमृत बरसाती है। यही धरती है जहां वह गोपाल पैदा हुआ था जिसने एक ही साथ कितनी कुमारियों का हृदय जीता। उस पार कुंज बन में जिनके साथ उनका हर

पूनों को अब भी रास होता । उस रात यमुना की लहरें भी नाचने लगती हैं । रात ही देखा मैंने वंशी की ध्वनि में गोपियों के नूपुर की रनझुन, उनकी हँसी, मान मनुहार सब कुछ मैं सुनती रही नन्दिनी ।

नन्दिनी भला भला राजकुमारी...मैंने कुछ नहीं सुना ऐसा होता तो...

कौमुदी हृदय के वे कान तुम्हारे बंद हैं । पुर की दूसरी रमणियों से जा कर पूछो सब कहेंगी उन्होंने सुना तुम्हारा जन्म यवन देश में हुआ था पर मेरा यहीं इसी मथुरा में... किसी से पूछ देखो .. किसी कुमार से किसी कुमारी से ... पर हां जिसका जन्म इस धरती में हुआ हो वह कहेगा उसने सुना ।

नन्दिनी विस्मय है ...

कौमुदी जिसका अनुभव नहीं होता...उसे विस्मय कहते हैं...पर जब वह हो जाता है, दिन का सूर्य उसके तेज में छिपने लगता है और रात के चन्द्रमा का श्रमृत उसी से चूने लगता है ।

नन्दिनी [विस्मय] ऐं...ठहरिए रुकिये राजकुमारी ! आपके कंठ कपोल और ललाट से पसीना निकल रहा है । आंचल से हवा कर दूँ ।

कौमुदी उस एक ने कितनी कुमारियों को जीत लिया...सोलह सौ ... सहस्र कितनी संख्या थी उस अंजले एक गोपाल की सखियों की ...क्या बात थी कि हर कुमारी के मन में वही बसा था...वह किसी की कामना नहीं करता था, इसलिए जितनी कुमारियां थीं सभी उसकी कामना करने लगीं । कामना रमणी करती हैं नन्दिनी ! और जब रोक नहीं पाती ... अपने पुरुष के निकट जाती है । वह ग्रहण करती हैं दान नहीं करती ।

- नन्दिनी ओह । तब कुमार अंगारक भूल गये दान न दे कर ग्रहण करने लगे ।
- कौमुदी मदनोत्सव के अवसर पर मथुरा की अप्सराओं को लजाने वाली...कुमारियां इसी प्रमदवन में आई थीं अंगारक के साथ कितने तरुण थे ।
- नन्दिनी जी...हां...
- कौमुदी सांस ले लेने दो दे रक्खा तुमने उस एक नाग युवक को...हां क्या नाम था उसका ?
- नन्दिनी (हँस कर) कल आपके साथ वे भी जलविहार में थे, उनका नाम भूल गई ।
- कौमुदी उनका नाम मैं बारबार भूल जाती हूँ...हां क्या नाम है ?
- नन्दिनी वीरसेन । कहिये तो दो तीन बार याद पड़ जाय ... फिर न भूले ।
- कौमुदी अरे चल उस नाम की माला नहीं जपूंगी मैं...देखा कितने हँसते थे वे...कौतुक में कोई भी उनके सामने न टिक सका एक एक कुमारी को रंग कर लाल कर दिया जिसने, पर उसका मन किसी को देख कर न हिला ... किसी के रूप का सम्मोहन उस पर न चढ़ा उसने कितनों को जीता पर उसे कोई न जीत सकी ... इस साधारण नाग युवक में यह बल कहाँ से आया नन्दिनी !
- नन्दिनी इसी में तो फिर मैं समझूँ “ आपका मन उनमें रम गया है आखें भरी हैं ...कपोल पर लाल चन्दन का लेप चढ़ा है, सारी देह में रोमांच है....राजकुमारी आपकी यह दशा क्यों
- कौमुदी प्रेम की वाणी मौन की होती है पगली....शब्द यहां कंठ के ऊपर नहीं आते...पर देख...किसी से कुछ न कहना अपने वश में नहीं हूँ मैं अब समझी...

नन्दिनी देवपुत्र वासुदेव की पुत्री और कहाँ यह सामान्य नाग युवक, सम्राट की सेना का छोटा नायक... उनके भाग्य से देवता भी ईर्ष्या करेंगे राजपुत्री !

कौमुदी [गंभीर ध्वनी में] देख रही हूँ मैं वह दिन भी जब हमारा राज्य इस धरती से उठ जायगा। ऐसा न होता तो फिर क्षत्रियकुमार अंगारक जिन पर अन्तर्वेद के पूर्वी छोर का भार है इतने लोलुप न होते। देवपुत्रों का राज्य अब रहेगा... उनके पैर उखड़ेंगे। नागयुवक और अंगारक की तुलना कर देंगे... देखो इस देश के पुरुष कैसे हैं विदेशी शाहानुशाही कितने दिन टिकेंगे यहां अब ?

नन्दिनी अब तो आप पुरुषपुर जायेंगी।

कौमुदी नहीं रे ! जन्म का अधिकार मैं न छोड़ूंगी। यह दुर्ग मेरा न रहेगा पर यह धरती मेरी रहेगी। जन्म भूमि का अधिकार समझी.... जो बस मृत्यु के साथ ही छूटता है।

नन्दिनी कुछ छिपा रही है राजकुमारी।

कौमुदी केवल यह हृदय जो अब उस एक के सामने खुलेगा...

नन्दिनी कुमार वीरसेन के सामने...

कौमुदी चुप वह नाम न ले...

नन्दिनी अनर्थ होगा राजकुमारी तब... कुमार अंगारक उन्हें जीने न देंगे।

कौमुदी (उद्‌वेग में) क्या कह रही है उनकी आयु अंगारक के हाथ में है ?

नन्दिनी दुर्गद्वार से अभी भीतर आ रही थी। वे कुषाण सैनिकों से बातें कर रहे थे... मुझे देख कर सब हो गये... कुछ करेंगे वे उनकी आंखों में कोई क्रूर संकल्प था।

कौमुदी (खेद में) नन्दिनी...

नन्दिनी तभी से डरी हूँ मैं राजकुमारी !

कौमुदी तो अंगारक जानते हैं मेरा मन इस नागयुवक में लगा है।

- नन्दिनी यह बात कब कहाँ छिपी ?
कौमुदी हं...कुमार कनिष्क से कहो मैं प्रसाद चाहती हूँ ।
(नेपथ्य में कई कंटों की ध्वनि हाय)...हाय...कौन है यह सब...दौड़ो देखो क्या है बोली तो उन्हीं दोनों की...(घबड़ाहट और ऊंची सांस)
- नन्दिनी राजकुमारी कुमार अंगारक और नागयुवक के शब्द स्पष्ट है ।
कौमुदी (वेग में चलती हुई) मेरे साथ चलो बढ़ाओ पैर ।
नन्दिनी (दूर की ध्वनि) संभल कर गिर न पड़ें राजकुमारी
(सन्नाटा)
- कनिष्क तुम दोनों यहाँ रुको देखता हूँ देवपुत्री कहाँ है ?
(जाने की ध्वनि)
- अंगारक उद्धत नाग ! देख ले अभी क्या न्याय होता है ? सिंह की प्रिया की ओर लियार कब तक देखेगा ! देवपुत्र वासुदेव की पुत्री तुझ दास के लिए नहीं है ।
- वीरसेन सावधान किस मुंह से दास कह रहा है मुझे दस्यु ।
अंगारक इसी मुंह से...जिस दिन देवपुत्र शाहि शाहानुशाही ने तेरे इस देश को बाहर उद्यान से आ कर जीता और हम विजंताओं के चरण तुम्हारे सिर पर पड़े । पराजित जाति किस दम्भ से अपने राजकुल का अपमान करेगी ।
- वीरसेन इसी का उत्तर देने मैं यहाँ आया...विदेशी शत्रुओं का बल भीतर से आंकने के लिए देख लिया...पहले धक्के में कुंप्पण मुंह से धूल सठा लेंगे (उपेक्षा और व्यंग का स्वर)
- अंगारक (क्रोध में) काट लूंगा जीभ...इसीलिए देवपुत्री से प्रेम करने लगा ।
- वीरसेन (व्यंग से) तुम्हारी राजपुत्री को जीत लेना तुम्हारे श्री और गौरव को जीत लेना है विदेशी दस्यु ! चक्रवर्ती सम्राट

चन्द्रगुप्त ने यवनराज बाला को पहले जीता और तब यवन सेना को ।

अंगारक हूँ उस सपने में पड़ा है ।

[कौमुदी और कनिष्क का प्रवेश]

कनिष्क मैंने दूध पिला कर इस नाग के बच्चे को पाला देवपुत्री !
इसे सेना में नायक बनाया और आज इसने देवपुत्र के दो सैनिकों को पर संहतूक चोट पहुँचा दी ।

कौमुदी इनका वंशन खोल कर...

अंगारक क्या कर रही है देवपुत्री यह ? देवपुत्र वासुदेव के सैनिकों पर इसने आघात किया

कौमुदी मेरे अधिकार में तुम्हें संदेह है अंगारक ! फिर न्याय के लिए मेरे सामने न लाना था हाँ तुम कहो नागराज क्या हुआ ?

अंगारक नागराज नहीं देवपुत्र का दास हैं । यह उनकी सेना का छोटा नायक...

वीरसेन मैं शत्रुचर हूँ राजकुमारी ! पद्मावती का वीरसेन नाग ।
यहाँ सेना में नायक का पद लिया था मैंने केवल विदेशी शक्ति के बल की थाह के लिये ।

कनिष्क ले लिया नाग ? दंड भी जानते हो इसका ।

वीरसेन जानता हूँ... मेरे न्याय का अधिकार अब कुषाण देवपुत्रों को न मिलेगा । इसी जगह लड़ कर मरूंगा । देवपुत्री न्याय में अपने पराण का विचार न करेगी इसी विश्वास में मैंने हाथ बांधने दिये अब वे खुले हैं ।

कौमुदी राजकुमार !

कनिष्क हाँ कहो मेरी देह में आग लगी है...

कौमुदी जिस महापुरुष का नाम तुमने धारण किया है उन देवपुत्र

कनिष्क के न्याय की बर्बाद न मिटा सके...अपने पूर्व पुरुष उन पितामह कनिष्क की ।

कनिष्क
कौमुदी

हमारे दो सैबिकों सिर फूट गया है देवपुत्री !
तब इन्हें वहीं क्यों न मार डाला...मेरे निकट न्याय के लिए क्यों ले आए ?

अंगारक

देवपुत्री ने इसका बंधन खोल दिया । आप नहीं जानते ... अपने इस दास से वे प्रेम करने लगी हैं

कौमुदी

सुन लिया कुमार कनिष्क आपने । यह मर्यादा है आपकी बहन देवपुत्री की ।

वीरसेन

इसी ईर्ष्या में पूजा के समय मुझ निरस्त्र पर तुमने आक्रमण किया दस्युराज । पर तुम झूठ कह रहे हो... देवपुत्री की ओर उस दृष्टि से मैंने एक बार भी नहीं देखा ।

अंगारक

देवपुत्री देखती रही है ।

कौमुदी

तब उसका दंड मुझे दो अंगारक । (स्वर कांपने लगता है)

कनिष्क

हूँ...तब इस अवसर पर मुझे कहां नहीं रहना है...

कौमुदी

न्याय और कर्तव्य की आंच तुम न सह सकोगे भाई पर नहीं इस सारे काण्ड की जड़ क्षत्रप अंगारक मुझे बना रहे हैं...तुम्हें रुकना पड़ेगा हां अब कहो नागराज किस तरह क्या हुआ ।

वीरसेन

शंकर के मंदिर में पूजा कर रहा था राजकुमारी !...पीछे से खड्ग का आघात मेरे सिर पर हुआ...उष्णीश कट कर नीचे गिरा देखिए यह...

कौमुदी

कुशाण राज्य की यही नीति है कुमार ! हां फिर तब क्या हुआ [गहरी सांस] तुम्हारे सिर से रक्त निकल रहा है नागराज । पहले इसका उपचार करो ।

वीरसेन इसका उपचार अब पद्मावती में होगा देवपुत्री ! घूम कर जब खड़ा हुआ...अंगारक के दोनों दस्त्यु खड्ग हिलाते दूट पड़े । अर्घ्यपात्र के कूर्म पीठ से निष्कारण कर दोनों के खड्ग छीन लिया मैंने फिर दोनों के कंठ पकड़ कर लड़ा दिया । अंगारक को जिस दिन द्वंद्व युद्ध में मारुंगा शिवपुरी काशी में अश्वमेध करुंगा । भगवान शंकर के सामने यह संकल्प लिया है मैंने ।

अंगारक किस दिन आज ही क्यों नहीं ।
वीरसेन चोरी से मंदिर में आक्रमण किया ... द्वंद्व के लिये सज्जकारते और तब देखते ।

कौमुदी तुम जो छोड़ दिए जाओ नागराज ! तब क्या करोगे ।
वीरसेन विन्ध्यवासिनी के सामने संकल्प करुंगा । कुशाण राज्य को ध्वस्त करने के लिये ... आज के दिन ठीक एक वर्ष बाद मैं लौटूंगा । कुशाण सेना के नायक के रूप में नहीं विजयी नागराज वीरसेन के रूप में । तब आप पुरुषपुर रहेंगी, देवपुत्री ! इस दुर्ग पर भारशिव नागों की पताका फरायेगी ।

कौमुदी [मंद स्वर में] कर सकोगे यह न हुआ तब... !
वीरसेन तब अकेले अपने अपराध के निर्णय के लिये आऊँगा ।
कौमुदी बात दे रहे हो तोड़ोगे तो नहीं !
वीरसेन वचन का बंधन लोहे के बंधन से कड़ा है मेरे लिए राजकुमारी ! क्या मैं आशा करूँ आपके पूर्वी क्षत्रप अंगारक सैनिकों का बंधन न करा कर मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करेंगे ।

कौमुदी हां तुम्हें मार कर जब यहां आयेंगे अपने विजयी क्षत्रप के कंठ में मैं मात्ता डालूंगी । हो गया अब नाग चले

जाओ आज का दिन न भूलो । पुरुषपुर न जाऊँगी मैं
इस धरती पर जन्म लेने का अधिकार मैं न छोड़ूँगी ।
राज और दुर्ग जो तुमने जीत भी लिया फिर भी यह
धरती मेरी रहेगी ।

वीरसेन
कनिष्क
कौमुदी
कनिष्क
कौमुदी

[आनन्द में] जय हो देवपुत्री [प्रस्थान]
अंगारक तुम भी जाओ और तुम भी नदिनी ।
हां कुछ कहना चाहते हो ।

तब अंगारक सच कह रहा था बहिन ।

यह नागयुवक अजेय है कुमार । यहां कोई कुमारी इसे
न जीत सकी मैं भी नहीं । अंगारक जब मुझे न पा
सका...लाख चेष्टा पर भी उसे लाज न लगी मेरा द्रोह
इस नागयुवक पर निकाला उसने । आज मंदिर में इसकी
हत्या होती । पर अब जब बच गया इस दूसरे जन्म में ...
हां क्या ।

कनिष्क
कौमुदी

कुछ नहीं...देखें नागयुवक बात का धनी भी है ।

परिवर्तन

[युद्ध के बाजे मेरी और शंख की ध्वनि]

(नेपथ्य में) विन्ध्यवासिनी की छाया में संकल्प करो
वीरो इस बार अन्तर्वेद से कुशाण म्लेच्छों को निकाल
बाहर करोगे ।

(नेपथ्य में) जो बिना सौ शत्रुओं के मारे मरे उसे
धिकार है वह दूसरे जन्म में वीर नहीं ... क्लीव पैदा
हो....

वीरसेन

विजय वरदान की देवी महामाया दास ने जो संकल्प
किया...कुशाण राज्य के मधुरादुर्ग में उसकी रक्षा करो ।
युगों से देश विदेशियों के पैरों में पड़ा है उसे खड़ा करो

शिवपुरी काशी में मेरे अश्वमेध की लाज बचावो भवानी । असुर विनासिनी ... इस बार के असुर क्या उन पुराने असुरों से अधिक बड़े हैं !

[अग्नि में आहुति स्वाहा और जय की ध्वनि]

पुजारी आह अग्नि की शिखाएँ उड़ रही हैं ... महामाया प्रसन्न है । विजय होगी तुम्हारी नागराज देखो देखो अग्नि की लपटें हँस रही हैं । धूप बायें हो कर ऊपर उठ रहा है ।

वीरसेन कृतार्थ है यह दास देव । वज्रसेन । अंगारक की कोई सूचना मिली ।

वज्रसेन कुशाण सेना पूर्व पश्चिम दोनों ओर से काशी पर चढ़ी आ रही है । गंगा के दक्षिण अंगारक दोनों सेनाओं की राह देख रहा है कल संध्या तक दोनों सेनायें भिड़ जावेंगी ।

वीरसेन तब रातों रात चल कर अंगारक से जूझना है भाई । तैयार हो ?

वज्रसेन हमारे सैनिक उसी उमंग में हैं जैसे ।

वीरसेन क्या ?

वज्रसेन [हँस कर] सभी विवाह को निकले हैं जैसे ।

पुजारी भवानी के यज्ञकुंड का यह भस्म मस्तक पर चढ़ाओ नागवीर ? तुम्हारे धर्म में धरती थरेगी ।

[एक ही साथ कई शंख और मंत्र की ध्वनि]

(नेपथ्य में) भवानी विन्ध्यवासिनी की जय...नागराज की जय सेना के सभी वीरों की जय ।

(सन्नाटा)

वीरसेन कुशाणों के साथ मथुरा के पूर्व हमारा यह अंतिम संघर्ष है महामाया की कृपा हुई तब फिर मथुरा दुर्ग के सामने ... अंगारक से द्वन्द युद्ध की बात ठहरी थी देवपुत्री के सामने ।

वज्रसेन कौन देवपुत्री ?
 वीरसेन अभी नहीं...कोई है वह देवपुत्री ।
 वज्रसेन समझ में नहीं आता भद्र कुछ छिपा रहे हो ...
 वीरसेन युद्ध की इस यात्रा में...प्राण हथेली पर ले कर ... अब
 क्या छिपाऊंगा किस लिये ।
 वज्रसेन यही तो फिर भी छिपा रहे हो...
 वीरसेन देवपुत्री वासुदेव की पुत्री कुमारी...कौमुदी...जिसके
 प्रेम का कवच पहन कर आज मुझे अंगारक से जूझना
 है।
 वज्रसेन आहा ! कुशाण राजकुमारी हमारी रानी होंगी।
 वीरसेन यवनराज पुत्री मगध की रानी बनी थीं ।
 वज्रसेन सच कहो...राजपुत्री अनुरक्त हैं । तभी तो मथुरा की
 ओर आखें लगी हैं । वहां से वायु आ कर कानों में कुछ
 कह रही है...यह सूचना मैं सेना को दूंगा...हमारे वीर
 दूने बल से लड़ेंगे ... शत्रु की कन्या हमारी रानी बनें
 इसी एक बात से हमारे इतिहास का कलंक धुल जायगा ।
 हां ... हां धुल जायगा ।
 वीरसेन मथुरा को अपनी जन्म भूमि कह कर इसी धरती में वे
 अपने जन्म का अधिकार मानती हैं ।
 वज्रसेन तुम्हारे पहुँचने के पहिले वे पुरुषपुर चली जा रही हों ...
 वीरसेन जन्मभूमि का अधिकार छोड़ कर ... नहीं वे वचन दे
 चुकी हैं ।
 वज्रसेन मंदिर में अंगारक ने जो देव पर आक्रमण किया उसका
 कारण देवपुत्री का अनुराग तो नहीं था ।
 वीरसेन हां यही था देवपुत्री के पैरों में उसने अपने हृदय का
 सारा रस बहा दिया...पर उसे प्रसाद नहीं मिला ।

वज्रसेन और तब किस सम्मोहन में अपने...

वीरसेन मांगने से मृत्यु भी नहीं मिलती... प्रणय मन की सबसे बड़ी कामना है। मैंने इस हृदय को वज्र से भी कटोर किया... कुमारियों के संकेत पर मैं हँस भर देता था। देवपुत्री ने कितने बहाने बना कर मुझे निकट रहने का अवसर दिया... जल विहार में नौका के पतवार पर मैं बैठाया गया। अंगारक जहां उन्हें आखों से पी जाना चाहता था मैं खिंचा रहा। पतवार से कूद कर ऐसी डुब्बी लेता था कि देवपुत्री डर से कांप जाती थी, मेरे डूबने के भय में वे कई बार रो पड़ी थीं।

वज्रसेन तब कहें, नारी के हृदयका रहस्य आप जानते हैं। रमणी उसी पुरुष पर प्राण देती है जो अपने प्राण की चिंता नहीं करता। भा गये, सामने गंगा की रेती में अंगारक शिविर है। घोड़ों और हाथियों के पैरों से सड़ी धूल अंधकार कर रही है।

वीरसेन रोक दो यहीं सेना... इस पेड़ में घोड़ा बांध कर मैं रुक जाता हूँ। हां यह लो मेरा पत्र अंगारक को देकर पूछो वह क्या चाहता है... मेरे साथ द्वन्द युद्ध कर राजपुत्री के सामने की बात मानेगा या सैनिकों के रक्त से गंगा की कछार रँगोगा।

वज्रसेन जैसी आज्ञा

[सेना रुकने का कोलाहल]

वीरसेन भागवती विन्ध्यवासिनी की सेना यहीं रुके। द्वन्द युद्ध का निमंत्रण यदि अंगारक ने मान लिया तब केवल दो के युद्ध में निर्णय हो जावेगा।

कई कंट ऐसा नहीं... भगवती के सामने हम सबने शपथ ली लो को मार कर मरेंगे।

वीरसेन सैनिकों के रक्त से गंगा का जल क्यों बिगड़े ।
 कई कंठ गंगा का जल शत्रुओं के रक्त से पवित्र होगा । प्रत्यन्तदस्थु
 जो यहां आ गये अब न लौटें...जन्मभूमि की लिए देश
 के धर्म के लिए...नागराज की कीर्ति के लिये पहले हम
 मरें । यह सुये ग भाग्य से मिला है भाग्य से...

वीरसेन आप लोग सुन लें
 कई कंठ चुप रहो सुनो नागराज क्या कहते हैं...

वीरसेन देवपुत्र वासुदेव की पुत्री कुमारी कौमुदी के सामने हम
 दोनों द्वन्द युद्ध के लिये प्रतिश्रुत हैं । भगवती के
 प्रसाद से जो अंगारक मरा तो हम सींधि मथुरा चलेंगे
 वहां जमुना की लहरों में विदेशी कुशाण रक्त नाचेगा ।
 और तब दुर्ग पर हम अधिकार करेंगे फिर सिन्धु पार
 पुरुषपुर तक...हमें उद्यान के, कुमा पार के सैनिकों से
 लोहा लेना पड़ेगा ।

कई कंठ यमराज से...हम यमराज से लड़ेंगी । कुमा पार के सैनिकों
 की विसात क्या है ?

वीरसेन विश्वास है मुझे भगवान् शंकर के झंडे की लाज आप
 रखेंगे ।

कई कंठ तो इस युद्ध का अधिकार नागराज अकेले चाहते हैं ?

वीरसेन अंगारक यदि युद्ध के लिये तैयार हो ।

(सन्नाटा)

अंगारक कौन है वीरसेन का चर...

वज्रसेन यहीं हूं मैं स्वामी के पत्र का उत्तर मिले मुझे...

अंगारक वीरसेन के साथ द्वन्द युद्ध मुझे स्वीकार है पर मेरे
 सैनिकों की बांहें भी फड़क रही हैं

वज्रसेन विन्ध्यवासिनी के सेवक उन बाहों को काट कर फेंक देंगे।
अंगारक कहां थी तुम्हारी विन्ध्यासिनी जब देवपुत्रों ने इस देश को जीत कर उनके शिखर पर ध्वजा गाड़ी थी।
वज्रसेन उनके सेवक तब सो रहे थे अब वे जागे हैं...
अंगारक इतनी लंबी नींद के बाद
वज्रसेन याद करो वह दिन जब मंदिर में नागराज पर तुमने आक्रमण किया था ? याद है यहां भवानी की मूर्ति हिली थी उस दिन...
अंगारक मेरी दोनों ओर की सेनायें अभी पीछे हैं उनके आ जाने पर...
वज्रसेन मथुरा के दुर्ग में देवपुत्री के सामने का निर्णय चेत करो। द्वन्द युद्ध में सेना क्या ?
अंगारक अच्छी बात तब भेजो वीरसेन को ... दोनों सेनाओं के बीच में युद्ध होगा किसी पक्ष का एक भी सैनिक आगे न बढ़ेगा।
वज्रसेन स्वीकार है...
अंगारक तुम्हारे साथ चल कर मैं बीच में धोड़ा रोक देता हूँ वीरसेन क पत्र का उत्तर पत्र से न देकर अपने आचरण से दे रहा हूँ। देख लो यह खड़ग, यह भल्ल, यह कवच और शिरस्त्राण।
वज्रसेन बहुत देखा है ऐसा स्रप। अब तुम देखो जो अब तक न देखा है।

[सन्नाटा]

अंगारक अभी समय है। वीरसेन लौट जाओ देवपुत्र वासुदेव का प्रताप सूर्य पुरुषपुर से शोण तक दहक रहा है ! तुम्हारे अपराध क्षमा कर दिये जायेंगे सेना में नायक का पद भी तुम्हें मिल जायगा।

वीरसेन [हँसी दूर की ध्वनि] कुशाण सूर्य का राहु तुम्हारे सामने है, पूर्व से उस सूर्य का ग्रास वह कर रहा है ।

अंगारक नहीं मानोगे प्राण भारी है ।

वीरसेन चुप रह बाचाल । देवपुत्री को प्रेयसी बनाने का यह अवसर न छोड़ सेनायें जानती हैं जनपद जानते हैं हम दोनों उनके प्रेम के भी प्रतिद्वन्दी हैं ।

अंगारक तब फिर आओ ...

वीरसेन पहला वार तुम्हारा

अंगारक क्यों ?

वीरसेन हमारे धर्म में शत्रु को पहले वार का अधिकार है ।

अंगारक कायरों का धर्म और होगा क्या ?

वीरसेन म्लेच्छ कुशाण । हिंसा और हत्या वीरों का धर्म नहीं है ।

अंगारक देख यह, संभल जा ।

[घोड़े वेग से घूमते हैं शस्त्रों की झंकार]

वीरसेन राजपुत्री कौमुदी का स्मरण कर ... रूप और प्रेम की उस प्रतिमा को मन में भर ले उसे देखने का अवसर अब तुझे न मिलेगा ।

अंगारक [क्रोध में कांपता स्वर] तुझे भी नहीं ...

[शस्त्रों की झन झनाहट और सांस का वेग अंगारक का खड्ग टूटता है ।

वीरसेन रुकता हूँ, मैं खड्ग ले आओ यह लोगे ...

अंगारक शत्रु के शस्त्र का भी विश्वास नहीं यह भल्ल है अभी...

[भल्लों की तड़क, घोड़े के पैरों की घोर ध्वनि ।]

(नेपथ्य में) क्षत्रप अंगारक की जय ... शत्रु मरा ...

(नेपथ्य में) महाराज वीरसेन की जय कुशाण विजयी नारायण की जय ।

वीरसेन गिरा तुम्हारा घोड़ा अंगारक संभालो ...

अंगारक शत्रु की कृपा नहीं चाहता... फेंक दिया यह भल्ल भी नाग ।

(दूर भल्ल गिरने की ध्वनि)

वीरसेन निरस्त्र शत्रु से नहीं लड़ता मैं ।

अंगारक (भयानक हँसी) मेरी भुजाओं का बल देख... समुद्र-सी अगाध और हिमालय सी अडिग ।

वीरसेन अच्छा तब मैं भी घोड़ा छोड़ता हूँ और शस्त्र...

(शस्त्रों के गिरने की ध्वनि) मेरी बाँहें भी टूट हैं :

(दोनों का मल्ल युद्ध पैरों के धरती पर पड़ने की ध्वनि बाहरी सांस)

वज्रसेन (दूर की ध्वनि) अंगारक के अंग वज्र के बने हैं । रक्षा करो महामाया ! अपने भक्त की लाज रखो । गिरा... अंगारक गिरा...

वीरसेन अंगारक ! रीढ़ टूट गई इसकी । मुँह से रक्त की नली बह रही है अङ्गारक !

अंगारक ओ...ओ...ओ...हो [हाथ पैर पटकने की ध्वनि]

वीरसेन मर गया... अन्तर्वेद आज स्वतन्त्र है । काशी का संकट टला भूत भावन मथुरा के दुर्ग पर तुम्हारी पताका फहरा कर तुम्हारी पुरी में गंगा तट पर पहला अश्वमेध होगा ।

वज्रसेन (वेग में प्रवेश) सावधान देव ! शत्रु निकट पहुंच गये [कोलाहल]

वीरसेन यह क्या कुशाण सैनिक द्वन्द युद्ध में तुम लोग कहां ?
कई कंठ कुमार अंगारक के साथ तुम्हें भी ...

वीरसेन तब आओ (दौड़ कर) खड़ग मिल गया अब...स्वामि भक्त अश्व भी अपने ही आ गया मेरे पास धन्य हो

संजय भांगूंगा नहीं... शत्रु की चोट पीठ पर न लेंगा
...बढ़ो मथो शत्रुओं की सेना को मंदराचल से...

(शस्त्रों की झनकार और युद्ध की ध्वनि)

वज्रसेन यह ले अधग । (पीछे से आघात करता है ?)

(शत्रु सैनिक के गिरने की ध्वनि)

(नेपथ्य में) महाराज वीरसेन की जय ...बढ़ो वीरो !
शत्रुओं के विश्वासघात का प्रतिकार करो । बीच में...
महाराज को अपने घेरे में कर लो और वृत्तव्यूह में लड़ो
(नेपथ्य में) हर हर महादेव ... हर हर महादेव ...
हर हर महादेव ।

[घोर युद्ध “ ललकार और आक्रमण की ध्वनि ”]

वीरसेन मथुरा चलना है वज्रसेन दो दिन में वह वर्ष बीत
जावेगा ... देवपुत्री तब मुझे बचन का धनी न मानेंगी ।
चलना है भाई दिन रात चलना है दो दिन और जमुना
किनारे देवपुत्रों का वह दुर्ग ।

वज्रसेन चिन्ता न करें हम पहुँचेंगे चाहे उड़ कर चलना पड़े ।

परिवर्तन

नन्दिनी राजपुत्री पूरे वर्ष भर, पर आपको प्रसन्न देख रही हूँ
कितनी माला गूँथेंगी । उङ्गलियां दुख जायेंगी । चम्पा
गूँथ देती और...मैं भी तो ।

कौमुदी (धीमी भाव मयी ध्वनि) रात स्वप्न देखा नन्दिनी !...
सुन्दर...मोहक मुकुट पहने...हँसी से मेरे हृदय और
आकाश को रंगते हुए ... ।

नन्दिनी कौन ! ... राजपुत्री कौन आया था स्वप्न में ... ?

कौमुदी क्या ... कुछ कहा तुमसे ... कैसा स्वप्न ?

नन्दिनी अभी कहा आपने । रात का स्वप्न...मुकुट पहने, हँसी

- से आपके हृदय और आकाश को रंगते हुए ... कौन था वह जो इस तरह... भला स्वप्न में आने की क्या बात...
कौमुदी (बात बदलने की चेष्टा में) कुछ सूचना मिली काशी के युद्ध की ... द्वन्द हुआ या ... उहुं बाई आंख फड़क रही है कोई शुभ सूचना मिलेगी तब ।
- नन्दिनी** किसकी विजय चाहती हैं राजपुत्री आप ?
कौमुदी चुप रह । छोड़ मेरी बात कोई भी ... तू भी उसी की विजय चाहेगी जो प्राण को हथेली पर ले कर चलता है ... जो जीवन के घेरे में बन्द रहना नहीं चाहता और ... रमणी का रूप जिसे सुख देता है अनुताप नहीं ।
 (भयभीत कुमार कनिष्क का प्रवेश) ऐं भाई क्या है... ऐसे डरते क्यों हो !
- कनिष्क** सर्व नाश हो गया राजपुत्री ! द्वन्द युद्ध में अंगारक मारा गया । वीरसेन के सैनिकों ने हमारी तीन सेनाओं के शव से गंगा का कछार पाट दिया । गंगा का जल सुनते हैं समुद्र तक लाल हो गया है ।
- कौमुदी** क्या ? द्वन्द के बाद नागराज ने हमारी सेना का संहार किया विश्वासघात से । द्वन्द के नियम तोड़ कर ...
- कनिष्क** अंगारक के मारे जाने पर हमारे सैनिक आवेश न रोक सके । वीरसेन पर आक्रमण कर दिया हमारे सैनिकों ने ।
- कौमुदी** तब अपनी करनी का फल पा गये वे ... खेद न करो कुमार ।
- कनिष्क** तुरंत तैयार हो जाओ बहन ।
कौमुदी किस लिये ! ...
कनिष्क हमें यहां से भागना है वीरसेन यमुना के उस किनारे आ गया है ।

कौमुदी भागेंगे भाई हम बिना लड़े। देवपुत्र पूर्वजों की कीर्ति
कहां रहेगी ?

कनिष्क सूर्य पर भी ग्रहण लगता है बहन। यहां सेना कितनी
है। हमारे सैनिक भी उसके आतंक से त्रस्त है।

कौमुदी हम दोनों ... भाई बहन दुर्ग के सिंहद्वार पर लड़ते
मरेंगे।

कनिष्क मरना इतना आवश्यक है।

कौमुदी तब तुम जाओ। तुम्हारी जन्मभूमि पुरुषपुर है पर मेरी
यही मेरी मथुरा। जन्मभूमि का अधिकार मैं न छोड़ूंगी।

कनिष्क तुम्हें इस अधम नाग की कृपा पर छोड़ जाऊं।

कौमुदी विजयी नागराज की कृपा पर छोड़ो मुझे। बात के धनी
हैं वे...वर्ष के इस अंतिम दिन वे आ ही पहुंचे।

कनिष्क तब वीरसेन पर तुम्हारा अनुराग है ... अंगारक ने सच
कहा था।

कौमुदी अंगारक का पौरुष उसे न रोक सका। तुम्हारा पौरुष जो
उसे रोक दे...नागराज को पराजित करो भाई! सेना
नहीं है उनके साथ द्वन्द युद्ध करो। सिंहद्वार पर मैं
प्रस्ताव करूंगी विश्वास है वे वीर मेरा प्रस्ताव मान लेंगे।

कनिष्क पर मेरे साथ पुरुषपुर न चलेगी।

कौमुदी नहीं। जन्मभूमि छोड़ने को न कहो। वर्ष के अंतिम दिन
नागराज आ गये अपनी बात वे न भूले और मैं भाग
जाऊं...उनके भय से! कुशाण सैनिक त्रस्त है...देवपुत्र
कुमार कनिष्क त्रस्त हैं...एक में तो निर्भय रहूं। नहीं तो
फिर देवपुत्रों के रक्त में ही भय का बीज समा जायगा।

कनिष्क सर्प का विश्वास नहीं करते बहन नागराज सर्प है।

कौमुदी सर्प की मणि के लिये उसका विश्वास करना पड़ेगा।
(नेपथ्य में कोलाहल महाराज वीरसेन की जय)

- कनिष्क आ गये (भय से कांप कर) दुर्ग में प्रवेश कर रहे हैं
सब...मैं चला देवपुत्री ! दोष न देना मुझे ।
- कौमुदी कभी नहीं...तुम इतनी दूर चले जाओ जहां नागराज का
भय न रहे । पर क्या वे पुरुषपुर न जायेंगे ! भागने वाले
कब कहां टिके हैं । नन्दिनी ।
- नन्दिनी (दूर की ध्वनि) कहिये कुमारी !
कौमुदी स्वतन्त्र करती हूं मैं तुझे भी राजकुमार के साथ...दुर्ग के
पश्चिम द्वार से निकल भागा...जा तू भी उनके साथ
चली जा डर रही हो तुम ।
- नन्दिनी देवपुत्री की छाया में मैं सदैव निर्भय हूं ।
कौमुदी और किसी का विश्वास मैं करूं या न करूं इस धरती का
विश्वास मुझे करना पड़ेगा नन्दिनी ! भाई चले गये...
चलो अब हम सिंहद्वार पर खड़ी हो कर नागराज का
स्वागत करें ।
- नन्दिनी इस संकट में हँसी सूझ रही है आपको देवपुत्री ! नागराज
का स्वगत करेंगी ?
- कौमुदी अब देवपुत्री नहीं हूं मेरे !...मेरा वह मान मिट गया
इस धरती की धूल से बनी मैं अब वैसी ही सामान्य
कुमारी हूं जैसी तुम हो...कोई भी है इसीलिये इस संकट
में मुझे हँसी सूझ रही है विजयी नागराज का स्वागत
मथुरा की सभी कुमारियां करेंगी एक मेरे न करने से
उनकी विजय नहीं मिटेगी । (गहरी सांस)
- नन्दिनी (चलते चलते) सामने धूल के बादल उठ रहे हैं उनके
साथ और जो अश्वारोही...
- नन्दिनी एक, दो, तीन, चार, पांच अश्वारोही सब हैं राजकुमारी ।
कौमुदी उष्णीश का छोर वायु में लहरा रहा है । भूली तो नहीं
नन्दिनी !

- नन्दिनी इस समय अपने को भूल गयी हूँ मैं...जमुना धरती छोड़ कर पाताल में धंसी जा रही है ।
- कौमुदी और जब देवपुत्रों की विजय हुई थी तब क्या जमुना धरती में नहीं धंसी थी ।
- नन्दिनी मैं नहीं जानती क्या हुआ...
- कौमुदी मैं जानती हूँ मनुष्य की विजय का प्रभाव प्रकृति पर नहीं पड़ता । प्रकृति अपनी गति में चलती रही है...कहा था मैंने तुझसे नागराज अजेय है...देवपुत्रों के पैर इस धरती से उखड़ जायेंगे...उखड़ न गये थे !
- नन्दिनी देखिये साथ के अधारोही को संकेत से थे हम लोगों को दिखा रहे हैं ।
(घोड़ों के वेग से चलने और फिर रुक जाने की ध्वनि)
- वीरसेन वर्ष की अंतिम संध्या से आज देवपुत्री ! विन्ध्यवासिनी की दया से मेरी बात रह गयी ।
- कौमुदी विश्वास था मुझे इस बात का.. इसी संध्या की प्रतीक्षा में वर्ष भर से...
- वीरसेन आप नहीं गई पुरुषपुर !
- कौमुदी जन्मभूमि छोड़ने को कह रहे हो । तुम्हारे राज्य में तीन हाथ धरती मुझे न मिलेगी । तुम्हारी विजय का गौरव क्या होगा विजयी तब !
- वीरसेन देवपुत्री की सेवा .. इन बन्धु वज्रसेन से मैंने कहा था अंगारक के साथ द्वन्द में...देवपुत्री का प्रेम मेरा कवच बना ।
- कौमुदी सच कह रहे हो नागराज ! तुम्हारा मन कुछ भी भुका था मेरी ओर ?
- वीरसेन उसे मैं यहीं छोड़ गया था राजकुमारी आपके चरणों में ।

कौमुदी (भारी ज्वर) और उस समय इसे तनिक भी न प्रकट होने दिया...कठोर...पुरुष का हृदय पुरुष का...

चञ्जसेन पुरुष का हृदय क्या होता है ?

कौमुदी लोहे से, पथर से वज्र, से भी कठोर (सिसकी)

चीरसेन इन आसुओं में डूब जाऊंगा मैं देवी ! दुर्ग आपका है राज्य भी आपका है सेवक को आदेश भर मिले ।

कौमुदी (भरे कंठ से) मेरी आखों पर उतरो । यह ध्वजा मुझे दो तुम्हारा यह विजय केतु मेरे हाथों । दुर्ग के स्तम्भ पर लहरा उठे ।

चीरसेन हां...यह सेवक भी साथ चले । अरे ! यह क्या मेरे कंठ में देवपुत्री के हाथों से माला ।

कौमुदी यह हाथ अब किसी देवपुत्री के नहीं तुम्हारी दासी के हैं नागराज !

चीरसेन कभी नहीं दास बन कर आया था मैं इस दुर्ग में और जन्म भर दास रहूंगा । इस माला में जिस अनुराग का रंग है...भाग्य का यह भार मुझ से चलता रहे । भगवान शंकर मुझे वह बल दे देवपुत्री !

कौमुदी तुम्हारी शक्ति मैं जानती हूँ जो कहीं तुम जानते तब अंगारक से तुम भी (जाते जाते) याद है प्रमदवन का वह दिन (मन्द हंसी)

परिवर्तन

(पृष्ठ भूमि में यज्ञ का वातावरण । वेदमंत्र के साथ अग्नि में आहुति । शंख और घंटे की ध्वनि)

कौमुदी नन्दिनी । यह काशी है भगवान शंकर के त्रिशूल पर बसी ...जिनके प्रसाद से यह दिन देखने को मिला ।

नन्दिनी यज्ञ के इतने लम्बे अनुष्ठान से आपका शरीर क्षीण हो गया है पर मुख मंडल का तेज पहले से अधिक है ।

कौमुदी आर्यपुत्र के साथ अश्वमेध के न अनुष्ठान सरल बन गये । एक समय का सार्ध १० आहार...कुश की चटाई पर फैल कर सो रहना ।

नन्दिनी मथुरा की वह फूलों की सेज और काशी का यह भूमि शयन (मन्द हँसी)

कौमुदी पर इस भूमि शयन में जैसी नींद आई वहां कभी नहीं आई नन्दिनी !

नन्दिनी सुलाने वाला समीप जो था...

कौमुदी चुप...

नन्दिनी आहा !...ऐसे ही देखो, देवपुत्री । भौहें कामदेव का धनुष । बरोनियां ऐसी ही तिरछी...ओठ दांत के नीचे कमल में बन्द बिजली से...

कौमुदी अरे ठहर भी... अश्वमेध का अवभृथ स्नान अभी शेष है । कविता बाद में करना सौन्दर्य के लिये प्रेम के लिये भी तपस्या आवश्यक है...

नन्दिनी देवपुत्री के बाल कैसे रुखे हो गये हैं । कौशेय सूत्र की लटें सी बन गई हैं । घड़ी भर में यह अनुष्ठान हो जाय फिर...

कौमुदी फिर क्या...

नन्दिनी इस जटा जूट का संस्कार करूंगी । अगरू की गंध और पाटल स्नेह से सींच कर चोटी करूंगी यूथिका की यह सूखी माला...

कौमुदी [हँस कर] इस जटाजूट में सुन्दर नहीं लगती मैं ?

नन्दिनी तपस्विनी पार्वती का रूप ऐसा ही रहा होगा...कामदेव को जला कर भी जिसके मोह में शंकर पड़े होंगे । देव-

पुत्री तपस्या का फल भी भोग है भगवती पार्वती के लिये भी यही हुआ ।

कौमुदी तपस्या का संतोष भोग में नहीं मिलता रे ! इस शिवपुरी को मैंने अभी नहीं देखा । गंगा के तट पर तू तो बराबर घूमती रही, कहेगी यह शिवपुरी कैसी है ?

नन्दिनी मैं सब कुछ देख चुकी हूँ । इस शिवपुरी के साथ गंगा की धारा बराबर लगी है एक छोर से दूसरे छोर तक । बीच में गंगा जैसे इसके हृदय से लगने को भीतर जा धंसी है नगरी और धारा दोनों ही अर्ध वृत्त बनाती है । किसी भी नगरी में तप और भोग, रूप और विराग का यह सहयोग नहीं मिलेगा देवपुत्री ।

कौमुदी इसीलिये तो यह शिवपुरी है । आर्यपुत्र कहां है ?

नन्दिनी यहां आइये देखिये इस वातायन से... कौमुदी आर्य पुत्र का शरीर क्षीण है नन्दिनी ! पर आकृति पर सूर्य का तेज दमक रहा है । अनुष्ठान के इन दिनों में अपनी चिन्ता न कर...

नन्दिनी देवपुत्री की चिन्ता में लगे रहे । जिस समय वे आपकी ओर देखते हैं अनुराग और कल्याण की किरणों में आप रंग जाती हैं ।

कौमुदी इसी फल के लिए मेरा जन्म हुआ था । भूतनाथ मेरा यह भाग्य बनाये रहे । ऋत्विजों से घिरे...

नन्दिनी ऋषि मंडली में इन्द्र से लग रहे हैं ।

कौमुदी नहीं...शंकर से । खुलावक्ष...प्रशस्त ललाट यज्ञ कुंड के भस्म का त्रपुंड...कह रूप शंकर का है नन्दिनी ! इन्द्र का नहीं ।

नन्दिनी तब तो देवपुत्री पार्वती है ।

कौमुदी हां जो मेरा प्रेम प्रभु की ओर उतना ही गंभीर और
अभोध हो ।

(मंत्र, शंख, तूर्य और आहुति की ध्वनि) पूर्णाहुति पड़
गई आ रहे है इधर ही अब ।

नन्दिनी अब गंगा में दम्पति स्नान करेंगे गांठ जोड़ कर...

कौमुदी गांठ जोड़ कर... इतने लोगों में...लाज लग रही है ।

नन्दिनी अश्वमेध पराक्रम पति के साथ गांठ जोड़ने में लाज...
कब किस रमणी को यह भाग्य मिला था !

वीरसेन (प्रवेश कर) बस अब अंतिम स्नान है देवी ! पुण्य से
यह पहला अश्वमेध निर्विघ्न समाप्त हुआ...

कौमुदी मेरा पुण्य मैंने कब क्या किया आर्यपुत्र वृक्ष की छाया
मात्र रही हूँ !

वीरसेन प्रमदवन का वह मदनोत्सव...देवी ने जब मेरी ओर
देखा...मेरी आँखें ऋप गई । इस अश्वमेध का संकल्प
तभी जगा था इस मन में । तुम्हारे योग्य बनने की
कामना में शरीर का एक एक बूंद रक्त नाच उठा था ।
पराजित दास देवपुत्री की कृपा कैसे लेता ! प्रेम भी कुल
और शील समान चाहता है ।

कौमुदी अभी बांध टूटेगा...अभी स्नान शेष है ।

वीरसेन विजय और कर्म के मूल में रमणी की कामना रहती है
प्रिये ! गंगा और शतद्रु के बीच की भूमि भगवान् शंकर
की ध्वज के नीचे है । भारशिवनाग सिन्धु पार पुरुषपुर
के मार्ग में है । किस बल से किस प्रेरणा से प्रिये ।

कौमुदी देव के पौरुष और महादेव शंकर के प्रताप से...

वीरसेन तुम्हारे प्रेम के अमृत से मेरा पौरुष जगा था और पौरुष
के जग जाने से शंकर का प्रसाद लिता ही । देवपुत्री

मेरी ओर अनुरक्त हैं...इस एक बल ने मुझ से यह सब कुछ कराया

कौमुदी
वीरसेन

अहोभाग्य...

सिन्धु तट से शोण तक के माण्डलीक आज अपने उपहारों के साथ यहां प्रस्तुत है...दूरस्थ जनपदों के ग्रामणी यज्ञ के अंत में विस्मय में सब कुछ भूल गये हैं।

वज्रसेन

(प्रवेश कर) देव महादेवी के साथ चले...स्नान का लभ आ गया भागीरथी के दूसरे किनारे कान्तिपुरी का गजयूथ विजय चिन्हों से अलंकृत...कुम्भ पर लाल स्वस्तिक और मंगल कलश लिये जल में उतर रही है।

कौमुदी

(कौतुक से) गंगा के किनारे बादल उठ रहे हैं भद्र...

वीरसेन

हां देवी आपके प्रेम और पुण्य के बादल...

कौमुदी

(आनन्द में) अरे नन्दिनी ! देख यह देख कैसा दृश्य है यह ... जहां तक किनारा देख पड़ता है...

नन्दिनी

आहा ! सूड में जल लेकर जो गजराज फेंक रहे हैं... बादल से मोती बरस रहे हैं ... इतने हाथी ... इनके रहने की धरती कितनी बड़ी होगी। कितने वृक्ष, लता, कदली कुंज इनके आहार में लगते होंगे।

वीरसेन

ऐसे तीन गजयूथ मेरी सेना में हैं यवन सुन्दरी. यह जो तुम देख रही हो केवल एक यूथ कान्ति पुरी का है।

नन्दिनी

इनके चलने से पर्वत हिलता होगा।

वीरसेन

विन्ध्य मेखला के बन पर्वत इनके आघात से हिलते रहते हैं। देवी कुछ सोच रही हैं.

कौमुदी

[भावावेश में] अपना भाग्य उस मदनोत्सव में मुझे क्यों न देख पड़ा आर्य पुत्र ?

- वीरसेन पर मुझे अपना दिखाई पड़ा देवी. उसी क्षण...मैंने देख लिया इस स्थान से देवपुत्री अपनी सेना का गजयूथ देखकर विस्मित हो रही हैं.
- कौमुदी सच उँहूँ ... ऐसा होता तो एक बार तो मेरी आखों में देख कर मेरा हृदय देखते ।
- वीरसेन वह असमय होता देवी. बौने का चन्द्रमा छूना होता... हंसी पात्र बनना नहीं चाहता मैं...अंगारक ने देख लिया उसके रास्ते का काटा मैं था.
- कौमुदी देखूंगी वह धरती मैं जहां द्वन्द युद्ध हुआ जिस धरती पर देव का प्रतिद्वन्दी गिरा था सिर टेकना है मुझे वहां.
- वीरसेन स्नान के बाद याचकों को दान दे कर ... माण्डलीकों के साथ चल कर वह स्थान देखो प्रिये !
- कौमुदी [उत्सुक हो कर] आज ही
- वीरसेन हां आज ही...
- वज्रसेन [दूर की ध्वनि] आमात्य ने कहा है देवपुत्री के दर्शन के लिये काशी की देवियां मार्ग के बायें फूल और अक्षत लिये खड़ी हैं और माण्डलीकों की पंक्ति दाईं ओर है । देवी सिर नीचे कर विनय में चलेंगी.
- कौमुदी आर्यपुत्र सिर नीचे कर चलने का अभ्यास मेरा नहीं है । जितने मुझे देखें उन सब को मैं भी देखू ।
- वीरसेन [हंसकर] दो आखों से उन लाख आंखों में कितना देखोगी प्रिये !
- कौमुदी मेरी दृष्टि की रेखा से इस ओर से उस ओर तक घूम जायेगी...सब उसी में आ जायेंगे ।
- वीरसेन [हंसकर] अहा ! आज देवी हंसी विखेर रही हैं । सब उसी में बंध जायेंगे दोनों ओर एक ही साथ...दो आंखें उन लाख लाख आंखों पर जादू डालेंगी.

कौमुदी अरे हां...न हो सकेगा आर्यपुत्र ! यह ठीक है जो सिर
कभी न झुका आज झुके.

[शंख और मंत्र की ध्वनि]

वीरसेन उठो अब...बाईं ओर मेरा हाथ पकड़ कर चल पड़ो...
यह पुण्य और प्रेम में सिर का झुकाना ही सत्य है
और प्रिये ! तुम पर इन तीनों का भार है ।

कौमुदी सहारा दे कर आर्यपुत्र फूल और अक्षत की यह वर्षा...
भाग्य का यह भार न चल सकेगा मुझसे. हां इसी तरह
[हर हर महादेव...अश्वमेध पराक्रम वीरसेन की जय
महादेवी कौमुदी की जय, जय, जय]

वीरसेन भाव में न भूल जाओ देवी ! मेरे हाथ के सहारे...यह
गंगा की पहली सीढ़ी है...यहीं से जल उठा कर सिर
पर धरो भागीरथी के जल का स्पर्श पहले सिर से हो
चरण से नहीं । हां यह लो पड़ गया अब जल तुम्हारे
सिर पर बढ़ो भीतर कंठ तक जल में ... गंगा में आज
एक कमल खिले ।

कौमुदी दो कमल देव एक क्यों ।

वीरसेन प्रिये !

कौमुदी देव ।

वीरसेन इसी तरह भगवती भागीरथी की धारा में ... गांठ जोड़े
हम संकल्प करें ...

कौमुदी किस बात का संकल्प प्रभु...

वीरसेन जहां यह पहला अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हुआ...गंगा के
इसी तट इसी भूमि पर दस अश्वमेध की माला बने
और अश्वमेध की इसी परम्परा में इस तीर का नाम
दशाश्वमेध पड़े ।

कौमुदी धन्य देव करें संकल्प...
 चीरसेन भारशिवकुल के आराध्य भूत भावन । आपकी कृपा से
 प्रत्यक्ष कुशाण सिन्धु के उस पार भाग रहे हैं । अन्तर्वेद
 आज भगवान के सेवकों के अधिकार में है... देवपुत्री
 कौमुदी आपके सेवकों की भार्या है । अश्वमेध की पर-
 म्परा फिर न मिटे भगवन । ...इस देश का धिक्कम कभी
 मन्द न पड़े ।

कौमुदी दासी की कामना पूरी हुई ... दशाश्वमेध की इस पुण्य
 भूमि के साथ दासी का नाम भी चलता रहेगा ।

चीरसेन होगा देवी यही होगा । नन्दिनी !
 नन्दिनी कहें देव !

चीरसेन महादेवी को संभालो [मंत्र और शंख की ध्वनि]
 चीरसेन शिवपुरी की इन देवियों को प्रणाम करो देवी ।
 कौमुदी [गद् गद् कंठ से] दासी प्रणाम करती है भगवती...
 कई स्वर महामाया तुम्हें प्रणाम कर आज हम धन्य हैं । नागराज
 की कामना भगवान शंकर पूरी करें ।

चीरसेन इसी तीर पर दस अश्वमेध की परम्परा चले ।
 कई स्वर और जब तक गंगा में जल रहे देवपुत्री कौमुदी का
 सौभाग्य अचल हो ।
